मेरी व्याख्यान-माला, संख्या २

"It is of no use to cultivate a worthy manner unless one have worthy matter."

—Wise saying

लेखन-कला

सत्यदेव

लेखन-कला

(प्रथम भाग)

लेखक और प्रकाशक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"शिक्षा का आदर्श", "कैलाश-यात्रा", "अमरीका-भ्रमण",
"मनुष्य के अधिकार", "आश्चर्य्यजनक-घंटी",
"राजर्षि-भीष्म", "सत्य-निबन्धावली",
"अमरीका-दिग्दर्शन", इत्यादि ।

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए० के प्रबन्ध से 'सुदर्शन प्रेस',
प्रयाग में मुद्रित ।

सं० १९७२

प्रथम बार २००० | यह पुस्तक, सत्य-ग्रन्थ-माला आफिस, प्रयाग, से मिल सकती है । | मूल्य नौ आने

पुस्तक-परिचय

इस पुस्तक को मैं इस स्वरूप में पाठकों के सन्मुख रख सका हूं, इसका मुझे स्वयं आश्चर्य्य है। "लेखन-कला" शीर्षक व्याख्यान मैंने लखनऊ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर दिया था। बाद में उसको कुछ बढ़ा कर "शिक्षा का आदर्श" पुस्तक के पहले सस्करण में सम्मिलित कर दिया था। जब "आदर्श" का पहला संस्करण खतम हो चुका तो उसको छपवाना आवश्यक हुआ। विचार किया कि "लेखन-कला" को अलग ट्रैक्ट के रूप में एक हजार प्रति छाप कर रख लिया जाय। मेरी अनुपस्थिति मे प्रेसमेन ने भूल से पहले फार्म को दो हजार छाप दिया; तब "दो हजार" की लाज रखने के लिए मैंने लेखन-कला सबधी कुछ नियमों का इसमे सम्मिलित करना भी उचित समझा। उसी के अनुसार टाइटल भी पहले से ही छपवा दिया। जब पुस्तक के तीन चार फार्म छप चुके तो मुझे इसमें मजा आने लगा। विचार किया कि जहां तक टाइटल महाशय आज्ञा देते हैं उसके मुताबिक तो किताब में अच्छी अच्छी चीजें भर देनी चाहियें, बाद मे देखी जायगी। चलाते चलाते बडी मुश्किल से निबन्ध-भेद तक पहुंचे, उसमे भी तार्किक-निबन्ध रह ही गया। कुछ खास नियम लेखन-शैली के अवश्य देने थे, उन बेचारों के लिए भी किसी प्रकार से स्थान निकाला। जब देखा कि अब गुंजाइश बिलकुल ही नहीं रही तो सब सामग्री को प्रथम-भाग का रूप देकर पुस्तक की पूर्ति कर दी है।

यह, थोडे शब्दों में, इस पुस्तक का परिचय है। मैंने (व्याख्यान को छोड़ कर) इसे अमरीका की प्रसिद्ध युनिवर्सिटी

आब् शिकागो के विद्वान अध्यापकों की पुस्तकों के सहारे पर लिखा है। जब मैं उस युनिवर्सिटी में पढ़ा करता था तभी से मेरी इच्छा "लेखन-कला" के विषय पर एक पुस्तक हिन्दी में लिखने की थी। आज मैं अपनी उस अभिलाषा का फल-स्वरूप अपने प्रेमियों के सम्मुख धरता हूं।

मुझे इस पुस्तक के लिखने में अंग्रेजी शब्दों का यथार्थ भाव प्रगट करने वाले हिन्दी शब्दों की खोज करने में बड़ी दिक्कत उठानी पडी है। मैंने प्रसिद्ध मरहटी विद्वान वामन आपटे की डिक्शनरी से सहायता ली है। मैं चाहता हू कि हिन्दी भाषा के अन्य विद्वान मेरी पुस्तक में जहां जहां कोई त्रुटि देखें, कोई उपयुक्त शब्द कहीं धरना चाहें, अथवा इसमें कुछ और सामग्री की जरूरत समझते हों तो वे कृपा कर मुझे उसकी सूचना अवश्य दें। मैं उन त्रुटियों को दूसरे संस्करण मे सुधारने का यत्न करूंगा, अथवा द्वितीय भाग में उन आवश्यक विषयों को सम्मिलित कर दूंगा।

मेरी इस पुस्तक को सत्य-ग्रन्थ-माला के प्रेमी कहां तक पसन्द करेंगे, यह मैं कह नहीं सकता। मुझे पूर्ण आशा है कि वे मुझे पत्र-द्वारा अपनी सम्मति लिख भेजेंगे। मैंने इस पुस्तक का दाम कागज की महँगी के कारण अधिक रखा है। कागज सस्ता होने पर दाम भी कम कर दिया जायगा।

मेरा विश्वास है कि जिस प्रकार मेरी अन्य पुस्तकों ने देश-सेवा कर मेरे चित्त को प्रसन्न किया है, इसी प्रकार यह भी हिन्दी-साहित्य की सेवा कर मेरे उद्योग को सफल करेगी। मेरा उद्देश्य देश में शुद्ध, निर्मल, देशभक्ति-रसपूर्ण साहित्य का प्रचार करना है, इसी से भारत-राष्ट्र का उत्थान होगा।

उस परमब्रह्म की भी यही आशा है।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष, १९७३

प्रार्थी—
सत्यदेव परिव्राजक

विषय-सूची

राष्ट्रीय साहित्य ! राष्ट्रीय विचार !!

सत्य-ग्रन्थ-माला

स्वामी सत्यदेव जी रचित सत्य-ग्रन्थ-माला की पुस्तकें आज देश की क्या सेवा कर रही है, इसको हिन्दी-संसार भली प्रकार जानता है। प्रत्येक भारतीय को इन ग्रन्थ-रत्नों का प्रचार बढ़ाना चाहिए। ग्रन्थों का नाम सुनिए—

१—**अमरीका-पथ-प्रदर्शक**—(द्वितीयावृत्ति) चार हज़ार छपा है। दाम पांच आने।

२—**आश्चर्यजनक-घंटी**—नया संस्करण हुआ है। दाम पांच आने।

३—**अमरीका-दिग्दर्शन**—सुन्दर टाइप, द्वितीयावृत्ति। दाम बारह आने।

४—**अमरीका के विद्यार्थी**—चार हज़ार छपा है। दाम चार आने। द्वितीयावृत्ति।

५—**अमरीका-भ्रमण**—सुन्दर द्वितीय संस्करण। दाम आठ आने।

६—**मनुष्य के अधिकार**—छः हज़ार छप चुका है। दाम पांच आने। द्वितीयावृत्ति।

७—**राजर्षि भीष्म**—अत्यन्त शुद्ध, नयी आवृत्ति। दाम चार आने।

८—**सत्य-निबन्धावली**—तीन हज़ार छप चुकी है। दाम आठ आने।

९—**कैलाश-यात्रा**—चार हज़ार छपी है। दाम आठ आने।

१०—**शिक्षा का आदर्श**—चार हज़ार छपा है। दाम पांच आने। द्वितीयावृत्ति।

११—**लेखन-कला**—नई पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। दाम नौ आने।

१२—**हिन्दी का सन्देश**—ग्यारह हज़ार छपा है। दाम एक आना। चतुर्थावृत्ति।

१३—**जातीय-शिक्षा**—दस हजार छप चुकी है। दाम एक आना। तृतीयावृत्ति।

१४—**राष्ट्रीय-संध्या**—सत्रह हजार छप चुकी है। दाम दो पैसे। तृतीयावृत्ति।

ये चौदह पुस्तकें स्वामी जी की रचित हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी रामतीर्थ जी का "**राष्ट्रीय-सन्देश**" भी हमारे यहां मिलता है। कृपा कर इन पुस्तकों का प्रचार कर जननी जन्म-भूमि की सेवा कीजिए।

निवेदक—

मेनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

प्रेम स्मृति

प्रसिद्ध साहित्य-सेवी

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

के स्तम्भ-स्वरूप

श्रीयुत पुरुषोत्तमदास जी टण्डन

को मेरा प्रेमोपहार

—ग्रन्थकर्ता

मेरी व्याख्यान-माला

द्वितीय पुष्प

लेखन-कला ।*

Force of language can come only from force of character. Clean writing can come only out of clean thinking and, in a measure, clean living.

—A. G. Newcomer

(१)

यों तो प्रत्येक व्यक्ति जो अपने या दूसरे के विचारों को शुद्ध भाषा में लिख सके लेखक कहला सकता है और 'लेखक' 'सुलेखक' आम बोल चाल की भाषा में व्यवहृत होते ही हैं परन्तु साहित्य की परिभाषा में 'लेखक' तथा 'लेखन-कला' के अर्थ बड़े गम्भीर हैं, उनकी व्यापकता ही निराली है उनका आशय ही कुछ और है। मातृ-भाषा के इस जागृति के काल में जबकि, राष्ट्र-निर्माण आरम्भ हुआ है, इस विषय पर विचार करने की परमावश्यकता है। इस समय नये नये लेखक पत्रि

*यह व्याख्यान पञ्चम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर लखनऊ में दिया गया था।

भावो से उत्साहित होकर मातृ-भाषा की सेवा पर आरूढ़ हुए हैं, आवश्यकता है, कि वे अपने कर्तव्य को समझें। उनको मालूम होना चाहिये कि साहित्य की रङ्गभूमि में उतरने के लिये क्या क्या योग्यताए दरकार है। न केवल यह बल्कि उन्हे साहित्य का उच्च आदर्श मालूम होना चाहिये तथा साहित्य-सेवी की भारी जिम्मेदारी को समझना ज़रूरी है । मातृभाषा की सेवा तथा अपने प्यारे नवयुवक लखकों से नम्र निवेदन करन के लिये मैने इस विषय पर कुछ कथन करने का साहस किया है। आशा है कि, साहित्य प्रेमी सज्जन मेरे इस निवेदन को ध्यान से सुनेंगे।

सब से प्रथम 'भाषा' इस शब्द का अर्थ जान लेना जरूरी है क्योंकि, प्राय लोग जहां थोडी वाक्य रचना सीख जाते हैं, अपनी गणना लेखकों मे करने लगते है। वे नही जानत कि, भाषा केवल साधन मात्र है। परस्पर एक दूसरे के सम्मुख अपने विचार प्रकट करने का जो साधन है वह भाषा है; चाहे उसका उपयोग वाणी द्वारा किया जाय, चाहे लेखनी द्वारा। 'भाषा' साधन है, उद्देश्य नहीं। जैसे धन साधन है धर्म करने का, परन्तु धन उद्देश्य नहीं। किसी के पास बहुत सा धन है पर वह उससे धर्म नहीं करता, उसके पास धन का होना निरर्थक है। वह धन से मनोरञ्जन करता है, नये नये नाच देखता है, लोगो को नाच के तमाशे दिखाता है इससे वह धार्मिक नहीं हो सकता। उसका धन उसके तथा समाज के लिये फजूल है, वह हानिकर है। इसी प्रकार 'भाषा' का ज्ञान मनुष्य को लेखक नहीं बना देता। वह भले ही उससे चन्द्रकान्ता जैसी रद्दी तथा राम-कहानी जैसी प्रमोत्पादक पुस्तके रच ले, वह उसके द्वारा दूसरो को बड़ी बड़ी कथनियां ही क्यो न सुना सके, परन्तु जब तक 'भाषा'

अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करती उसका ज्ञान कभी भी व्यक्ति को लेखक नहीं बना सकता।

अच्छा तो 'भाषा' का उद्देश्य क्या है ?

जैसे धन का एक उपयोग जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करना है वैसे ही उसका मुख्य उद्देश्य परोपकार है—अर्थात् अपने अन्य बन्धुओं की सेवा करना है। इसी प्रकार भाषा का एक उपयोग आपस की बोल चाल, एक दूसरे को बात समझा लेना है, पर इसका मुख्य उद्देश्य उच्च भावों को अपने भाइयों के सामने रखना अर्थात् उनको उन्नत पथ पर ले जाने के लिये नया सन्देश, नया उत्साह, नयी सामग्री, नया आदर्श पेश करना है। यों तो कहा जाता है, "there is nothing new under the sun" अर्थात् 'सूर्य्यमण्डल में कोई बात नयी नहीं है' पर यह केवल कथन मात्र है। विद्या के विकाश से प्रकृति के नये नये रूप प्रकट होते रहते है। नित्य लाखों बच्चे पैदा होते हैं पर एक से एक नहीं मिलता, यों कहने को उनमें कोई नयी बात नहीं। तात्पर्य्य यह है कि 'भाषा' का उद्देश्य समाज का सुधार, उसको उन्नति के पथ पर ले जाना है। यदि कोई भाषा का पण्डित इस उद्देश्य का पालन नहीं करता तो वह कदापि भी लेखक कहलाने का अधिकारी नहीं।

हिन्दी संसार में इस समय चार प्रकार के लेखक दिखाई देते हैं। एक तो वे जो सचमुच साहित्य की परिभाषा मे लेखक हैं, जिनके तन को देश सेवा की धुन लगी हुई है, जो अपने देश व धर्मों की हीनावस्था पर अश्रुपात करते हैं, जो देशोत्थान के पवित्र कार्य्य के हित परिश्रम कर पुस्तकें रचते हैं। ऐसे महानुभावों के विषय में मै आगे चल कर कुछ कहूंगा।

दूसरे वे महाशय हैं जो धन कमाने के लिये लिखते हैं। हालांकि हिन्दी पुस्तकों से संसार में अभी अङ्गरेजी की भांति आमदनी नहीं है, पर तो भी क्या, 'भागते भूत की लंगोटी ही सही !' कुछ मिलना चाहिये। चालीस, पचास, सौ, जो कुछ एक छ फार्म की पुस्तक से मिले, इन्हें तो रुपये से काम हैं। रुपये दे दो, पुस्तकें लिखवा लो। ये लोग पुस्तकें लिखने की मशीनें हैं। अपने दिमाग से न लिखेंगे तो संग्रह ही कर देंगे और पुस्तक पर बड़े अभिमान से छापेंगे,—'संग्रहकर्त्ता'— क्योंकि उनको तो रुपये से मतलब है। भला यदि संग्रह भी न हो सके, क्योंकि उसमें भी तो परिश्रम लगता है, तो फिर किसी उल्लूदसन्त भोलेभाले पण्डित को बीस तीस रुपये मासिक देकर नौकर रख लिया। अब धड़ाधड़ पुस्तकें निकल रही हैं। भोले पण्डित लिख लिख कर पुस्तकें तैयार कर रहे हैं और मशीन का स्वामी उन पुस्तकों को अपने नाम पर दूसरों के हाथ चौगुने, पचगुने, दशगुने नफे पर बेच रहा है। धन भी मिला और प्रसिद्धि भी। अब आप की साहित्य-सेवियों में गणना होने लगी और वर्ष भर में सब से अधिक पुस्तकें इनके नाम की निकल रही हैं।

इसी श्रेणी में और ऐसे ही 'लेखकों' के छुटभैय्या धन-लोलुप और भी निकले। उन्होंने मित्रता अथवा साहित्य-सेवा के बहाने दूसरों की लिखी पुस्तकें अपने नाम से छपवा ली और लिखने वाले को एक पैसा भी पुरस्कार का न देकर थोथा निष्काम कर्म्म का उपदेश सुना उसकी मेहनत आप डकार गये ! यदि इससे भी पेट न भरा तो एक छोटा मोटा छापाखाना खोल 'साहित्य-सेवा' के विज्ञापन बांट—"हम लेखकों को पुरस्कार देते हैं" ऐसा जाल फैला नये पुराने लेखकों को फांसना आरम्भ किया। अब क्या होने लगा?

दूसरों की लिखी हुई पुस्तकें इनके यहां आती हैं। ये महाशय उसे अपने यहां रख कर उसकी नकल करवा लेते है और दो चार सप्ताह बाद लेखक को उसका हस्तलेख Manuscript—"दुःख है हमे आप की पुस्तक पसन्द नहीं आयी"—लिख कर लौटा देते है। पांच चार महीने बाद उसी पुस्तक में इधर उधर काट छांट कर, नया नाम देकर, अपने नाम से छपवा लेते है। 'न हींग लगे न फिटकरी' मुफ्त मे पैसे कमाना और साहित्य सेवियों के लिस्ट में सब से पहले नाम लिखाना, यह काम इन लोगों का है। हिन्दी संसार मे एक नहीं कई ऐसे नामधारी लेखक हैं जो किसी विषय पर बीस सतरें भी ठीक ठीक न लिख सकें पर जिनके नाम की पुस्तकें छप रही है और वे उनसे फायदा उठा रहे हैं।

तीसरे प्रकार के लेखक वे है जो दूसरो को बदनाम करने अथवा हँसी मज़ाक के लिये लेख लिखते हे। उनके हृदय द्वेष से कलुषित हे। वे बी० ए० है, एम० ए० हे, सब प्रकार से योग्य है, लिख सकते हैं, पर उनके मन की प्रवृत्ति दूसरों की निन्दा, दूसरो को नीचा दिखाने की ओर लगी रहती है। वे भाषा के पण्डित हैं, शब्द विन्यास खूब जानते है, बुद्धि भी कुशाग्र है पर उनकी योग्यता उनकी बुद्धि साहित्य-क्षेत्र में मल्ल युद्ध करने मे व्यय होती है। वे अपने पैने बाणों से दूसरों को घायल कर अति प्रसन्न होते है और अपने आप को साहित्य का सूर्य्य समझते है। ऐसे मनुष्य भयानक है। वे देश और समाज के शत्रु है। 'भाषा' के साधन का दुरुपयोग कर वे समाज में कुरुचि उत्पन्न कर सकते है, समाज मे द्वेषाग्नि भड़का सकते है, परोपकारी साहित्य से लोगों को कुछ काल के लिये वञ्चित रख सकते है। ऐसे व्यक्तियों से साहित्य को बचाना चाहिये।

चौथे प्रकार के लेखक वे हैं जो केवल नाम के भूखे हैं। किसी पुस्तक पर उनका नाम छपना चाहिये बस यही उनकी कामना है। इसके लिये वे धन खर्च करते हैं; बड़े बड़े विद्वानों से पुस्तकें लिखवा कर अपने नाम से छपवाते हैं। प्रायः राजा महाराजा लोग ऐसा करते है। यह भी अनुचित है। पुस्तक लिखने वाले के नाम से छपनी चाहिये ताकि उसकी विद्वत्ता, उसकी प्रतिभा का प्रकाश चारों ओर फैले। विद्वत्ता प्रतिभा दैवी शक्ति है, इनका क्रय विक्रय नहीं हो सकता। इसके आर्थिक लाभों को कोई भले ही बेच दे पर उस सार वस्तु पर अधिकार देश अथवा समाज का है। पुस्तक के उपदेशों, उसके गुण दोषों का, उसके लेखक के साथ गहरा सम्बन्ध है। पुस्तक की उपयोगिता को चिर-स्थायी करने के लिये, उसे भावी सन्तानों के लिये पथ-प्रदर्शक बनाने के लिये यह आवश्यक है कि पुस्तक के असली लेखक का नाम उस पर रहे। धन देने वाले किसी दूसरे तरीके से यश कमा सकते हैं। झूठ मूठ के लेखक बनने तथा धन देकर प्रतिभा खरीदने का यत्न करने से वे प्रतिभावान् नहीं बन सकते।

इन चार प्रकार के लेखकों का वर्णन करने के बाद अब हम कुछ अधिक इस विषय की मीमांसा करते है।

(२)

अब हम सबसे पहले साहित्य का गला घोटने वाले उन 'लेखकों' के दोष दिखलाते हैं जो केवल पैसा बटोरने के लिये कागज काले करते है। ऐसे लोगों में सब से पहला नम्बर उन धूर्तों का है जो गन्दे और अश्लील ग्रन्थ लिख कर अपने पाठकों का चरित्र बिगाड़ते हैं। इनके लिखे हुए उपन्यासों से

सैकड़ों हजारों नवयुवकों के जीवन भ्रष्ट हो गये, पर क्या मजाल इन देश-शत्रुओं की लेखनी थम जाय । इनकी जाने बला ! इनको न देश से काम है न जाति से, इनका ईश्वर तो पैसा है । पैसा दे दो जो चाहे लिखवा लो । गन्दी से गन्दी अङ्गरेजी पुस्तक का अनुवाद करते ये न चूकेंगे, यदि उससे कुछ प्राप्ति है । जानते है कि, रेनल्ड्स के उपन्यासों से भारतीय युवकों के चरित्र बिगड़ेंगे पर इनको क्या ! वे बिकते तो है । इनको बिक्री से मतलब है । उनका हिन्दी अनुवाद करायेंगे, बड़े बड़े विज्ञापन छपवा कर बटवायेंगे और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों पर स्वयं जाकर उन अश्लील पुस्तकों के विज्ञापन बाटेंगे ! भला इस निर्लज्जता की भी कोई सीमा है । इसका कारण यह है कि, हिन्दी संसार में कोई 'पबलिक ओपिनियन' नहीं है । यहां अधिक पत्रो के सम्पादक खुशामद पसन्द और कायर हैं । रद्दी से रद्दी पुस्तक निकल जाय वह भी इनके विचार में "संग्रह करने योग्य" है । कोई ऐसा नहीं है जो गन्दी और अश्लील पुस्तकों के लेखकों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठावे और हिन्दी-साहित्य पर पड़े हुए कीचड़ को धो डाले । देश का कानून भी विचित्र है । गन्दी सड़ी शाक तरकारी बेचने वाले को म्यूनिसिपालिटी दण्डनीय समझती हैं, चर्बी मिला हुआ घी बेचने वाला सजा पाता है; पर वह दुष्ट जो भाषा जैसे पवित्र साधन को अपवित्र बनाता है, जो साहित्य जैसी राष्ट्रीय-शक्ति को कमज़ोर करने का उद्योग करता है, बिना किसी रोक टोक के अपनी गन्दी पुस्तकों का व्यापार कर सकता है । गवर्नमेण्ट चोर को सज़ा देती है पर जिनकी पुस्तकें 'ऐयारी' और 'कुमकुमे-बाजी' सिखला कर चोर बनाती हैं उनको कोई भी अपराधी नहीं ठहराता । वे धन बटोर कर इस योग्य बन जाते है कि

साहित्य-सेवियों में उनकी गणना होने लगती है। अजब ज़माना है!

सोचने की बात है, कि उस मनुष्य को लेखनी उठाने का क्या अधिकार है जिनके पास श्रेष्ठ विचार नहीं है। एक व्यक्ति का दिमाग खराब (Deseased brain) है, हम समझ सकते हैं, उनके साथ हमारी सहानुभूति है। किन्तु वह आदमी महा नीच है जो अपनी बीमारी द्वारा धन पैदा करता है, जो अपनी बीमारी के कीड़ों को पुस्तक रूपी साधन बना अपने अन्य भाइयों तक पहुंचाता है। भाषा, शुद्ध साहित्य तथा पवित्र भाव प्रचार करने के लिये है, भाषा मानसिक व्याधियों का इलाज करने के लिये है, भाषा समाज में उन्नत विचार फैलाने के लिये है, इसलिये गन्दी और अश्लील पुस्तकों के रचने वाले अपनी भाषा के शत्रु हैं। वे कदापि लेखक नहीं कहला सकते। वे केवल अपने बुरे खयालात का ताना बाना बुन सकते हैं।

पिछले दस वर्षों में राष्ट्रीय उत्थान के विचार देश में फैलने से शिक्षा की चर्चा अधिक होने लगी है। हिन्दी समाचार पत्रों तथा पुस्तकों के पढ़ने वालों की संख्या खूब बढ़ी है। जागृति होने के कारण देश भक्त सज्जन अपने धन को मातृभाषा की सेवा में लगाने पर कटिबद्ध हुए हैं। हिन्दी की पुस्तकें बिकने लगी हैं। ऐसे अवसर पर बहुत से स्वार्थी लोगों ने अपना अपना उल्लू सीधा करना शुरू किया है। पुस्तकें लिखना उनका पेशा है। वे चालीस पचास रुपये लेंगे और डबल क्राउन सोलह पेजी एक सौ पृष्ठ की पुस्तक झट से गढ़ देंगे। ये लेखक नहीं हैं बल्कि पुस्तक गढ़ने की मशीनें हैं। ऐसे लोगों की पुस्तकें पढ़ने से मानसिक विचारों की तह मालूम हो जाती है। उनके शब्दों में बल नहीं, उनमें

जीवन नहीं। पढ़ने वाला ऐसी पुस्तकों से कुछ लाभ नहीं उठा सकता; उस पर पुस्तक का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि जब लिखने वाला बिना उद्देश्य के लिखता है, वह केवल टका बटोरने के लिये लिखता है तो उसके वाक्यों का प्रभाव कैसे पड़ सकता है? असम्भव है। पुस्तक पढ़ने से मालूम हो जाता है कि लेखक का हृदय पुस्तक में नहीं है। उसके विचार अधकचरे तथा नीरस होते है। वह स्थान स्थान पर उपदेशक, सुधारक, नेता बनने का यत्न करता है, वह शब्द जञ्जाल से अपने पापी, थोथे विचारो को छिपाता है पर उसका मुलम्मा कुछ काम नहीं देता। वह पाठकों को धोखा देकर बडे लेखकों की नकल करता है पर नकल असल नहीं हो सकता। यदि पाठक को कुछ भी परख है तो वह फौरन उस मायावी लेखक के कपट जाल को पहचान लेता है और उस कोरी बातो की पिटारी गढ़ी हुई पुस्तक को फेंक देता है।

ऐसे गढ़कू लेखकों से बचना चाहिये। एक अच्छी, मौलिक, जीवनप्रद पुस्तक पढ़ो पर कोरा, घन्टो में लिखी हुई, मशीनी सैकड़ों पुस्तकें मत पढ़ो। ऐसी पुस्तकें पढ़ना समय नष्ट करना है। जीवन के अमूल्य समय का नकली लेखकों के चोंचलो में मत खर्च करो।

यदि इन नकली लेखकों से कोई इनकी अपनी लिखी हुई पुस्तको के विषय पूछे तो वे 'लिक्खाड' स्वय उनको नहीं जानते। कारण यह है कि इनकी पुस्तकों का अच्छा भाग दूसरों की पुस्तकों से नकल किया हुआ होता है। इनको लिखने की जल्दी होती है, इसलिये झोक मे नकल करते चले जाते हैं और बीच बीच में अनापशनाप अपनी लेखनी का नमूना भी जताते जाते है, ताकि पाठक उस पुस्तक को इनकी

उचित समझे। परिणाम यह होता है कि इनके हृदय की कालक से वे चुराये हुए 'मोती' भी स्याह हो जाते हैं और वह पुस्तक अपने भयावने रूप मे प्रकाशित हो जाती है।

कुछ लेखक ऐसे हैं जिनके पास अपने घर का तो कुछ होता नहीं पर वे दूसरो से पुस्तके लिखवा कर सम्पादक के रूप मे लेखक बनना चाहते है या 'समालोचक' के परमपद को प्राप्त कर मोक्षलाभ की इच्छा रखते हैं। सौ में से पचानवे ऐसे लेखकों की पुस्तके 'फोर्थ क्लास' ढङ्ग की निकलती है। यह बात अलग है कि लम्बे लम्बे विज्ञापन देकर अपनी पुस्तकों को साहित्य-शिरोमणि ठहरा लिया जाय, या किसी प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक की मित्रता का नाजायज़ फायदा उठा कर उससे 'युगपरिवर्तन' का सार्टिफिकेट ले लिया जाय पर इन सब चालो से लेखक नहीं बना करते। सच बात तो यह है कि दूसरो के किये हुए परिश्रम से झूठ मूठ अपनी बड़ाई लूटने वाले व्यक्ति लेखक नहीं हो सकते। लेखक बनने के लिये कुछ तपस्या की आवश्यकता है।

(३)

कुछ लोगों ने लेखक बन कर ख्याति प्राप्त करने का एक नया और सहज मार्ग निकाला है। वह क्या ? सुनिये। महर्षि बाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास, कविकुल शिरोमणि कालिदास आदि प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवियों के ग्रन्थों के अनोखे संस्करण छापने आरम्भ किये है और नाम रखते है,—बाल महाभारत, बाल रामायण, बाल कालिदास, बाल पुराण, बाल गीता। सुना आपने ? अब कसर केवल बलोपनिषद, बाल ब्राह्मण, बालायुर्वेद, बाल धनुर्वेद, बाल ऋग्वेद, बाल यजुर्वेद, की रह गयी है। ये भी निकलेंगे। ईश्वर इन 'बालोपकारी लेखकों'

को चिरञ्जीव रखे ! जिस महाभारत को हम साहित्य समुद्र कह सकते हैं, जिसमें बालकों के लिये उपयुक्त सैकडों पुस्तकें निकल सकती है, उस महाभारत को मथ कर इन हमारे लेखकों ने 'बाल महाभारत' रच डाला । धन्य इनकी बुद्धि और धन्य इनका साहित्य प्रेम ! साहित्य के उन सूर्यों के इसी प्रकाश से ये लोग भी प्रकाशित होना चाहते हैं, पर कहां राजा भोज और कहां कानडा तेली ! सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने के लिये भी अपनी कुछ सम्पत्ति चाहिये, अपना कुछ शरीर चाहिये। कुछ भी तो तुलना हो।

यदि कोई महाशय यह कहें कि कौरवों और पाण्डवों की कथा तथा महाभारत के युद्ध की कहानी को बालकोपयोगी भाषा में लिख कर हमने बालकों के लिये उपयोगी साहित्य की रचना की है, इसमें क्या बुराई की है? उत्तर में हम यह कहते हैं कि उस छोटी सी कहानी की पुस्तक का नाम बाल महाभारत मत रखो। ऐसा नाम रखना लोगों को धोखा देना है और उस बड़े ग्रन्थ की कद्र कम करना है। मैं जब उर्दू पढ़ता था तो 'कसिसहिन्द' नामक उर्दू की पुस्तक मे 'कौरवों और पाण्डवों की लडाई सम्बन्धी एक बड़ा निबन्ध पढ़ा था जिस में उस कथा की मोटी मोटी बातें सब आगयी थीं। ऐसा करना ठीक है, उपयोगी है। हिन्दी पुस्तक प्रकाशकों और लेखकों को सोच समझ कर कार्य्य करना उचित है।

बाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थो को आदर्श रूप में सामने रख कर उन में लिखे हुए उपदेश, गाथा, इतिहास, जीवन चरित्र आदि सामग्री से विविध प्रकार की पुस्तकें रचनी चाहिये। उन में सैकड़ों पुस्तकों के लिये सामग्री मौजूद है। कथा, वार्ता, इतिहास, उपदेश जैसी सामग्री हो उसको

सरल भाषा में लिख कर और वैसा ही नाम देकर साहित्य क्षेत्र में लाना चाहिए। भ्रमोत्पादक नाम रख कर अपनी पुस्तक का महत्व बढ़ाना अनुचित है।

(४)

अच्छा लेखक होने के लिये दो बातों की बडी भारी आवश्यकता है—भ्रमण और स्वाध्याय। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जिन्होंने स्कूल में शिक्षा नहीं पायी पर उनका अनुभव इतना बढा चढा हुआ है कि वे बडे बडे विद्वानों से टक्कर मारते हैं। ऐसे मनुष्य थोडे से भाषा-ज्ञान के द्वारा अच्छे लेखक हो सकते हैं। इसलिये लेख सम्बन्धी सामग्री इकट्ठी करने के लिये भ्रमण की बडी जरूरत है। प्रत्येक उन्नत भाषा-साहित्य की भ्रमण सम्बन्धी पुस्तकों में खास आकर्षण होता है, उनके पाठक अधिक होते हैं। नये नये शहर तथा देश घूमने से ज्ञान का दायरा बढ़ता है तुलना करने की शक्ति उत्पन्न होती है, भांति भांति के दृश्य नयी नयी शिक्षा देते हैं, भिन्न भिन्न स्वभाव के मनुष्यों के मिलने से मनुष्य स्वभाव का परिचय मिलता है, सत्पुरुषों के साथ मुलाकात करने से अपने गुण दोषों का ज्ञान होता है, उन्नत देशों में घूमने से अपने देश की दीनता के कारण समझ में आते हैं और देशहित कार्य करने में नयी नयी बातें सूझती हैं। लेखक को भ्रमण से बडी भारी सहायता मिलती है।

यदि भ्रमण न हो सके तो दूसरों के रचे हुए ग्रन्थ पढ़ने चाहिये इसके लिए अच्छे पुस्तकालय से सम्बन्ध जोडना उचित है। जो लेखक बराबर स्वाध्याय जारी रखता है, जो नित्य नये से नये विचारामृत का पान करता रहता है उसकी आन्तरिक शक्तियों का शीघ्र विकाश होता है और उसे नया

सन्देशा देने में बड़ी सहायता मिलती है। जितना मनुष्य अधिक विद्वान् होगा, जितना अधिक वह पुस्तकावलोकन का प्रेमी होगा उतनी ही अधिक उसके विचारों में गम्भीरता और परिपक्वता आ जायगी। लेखक को अपना पठन पाठन जारी रखना चाहिये, वह सदा अपने आप को विद्यार्थी समझे। नयी बात सीखने के लिये सदा तैयार रहे। जिसके पास जितनी अधिक सामग्री होगी उतना ही उसके लेख का गौरव बढ़ेगा। इसलिये अभिमान त्याग, अन्तःकरण को शुद्ध रख अपने निर्मल विचारों को लेखबद्ध करना चाहिये।

हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में यों तो लेखक ही इने गिने हैं पर जिनको ईश्वर की दया से कुछ लिखना आ गया है उनमें अभिमान भरा है। वे अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं। किसी पत्र या पत्रिका के सम्पादक क्या हो गये मानो साहित्य के सूर्य्य ही बन गये! जो इनकी खुशामद करे उसको तो आकाश पर चढ़ा दें, कालिदास का अवतार बना दें, पर जिनसे रुष्ट हैं बस उसको नीचा दिखाने में घृणित से घृणित उपायों का अवलम्बन करने से भी न चूकेंगे। दैवगति से समय भी इनके अनुकूल हैं। प्रेस एक्ट के मारे स्पष्टवक्ता कलम उठा नहीं सकते, बस इसलिये इनकी चाँदी है। कैसा ही रद्दी इनका समाचार-पत्र तथा पत्रिका हो, उसके भी पढ़ने वाले मिल ही जांयगे, पर ऐसे दिन सदा न रहेंगे। एक न एक दिन 'प्रेस-स्वतन्त्रता' का सूर्य्य उदय होगा उस समय "निरस्तपादपे देशे एरण्डोपि द्रुमायते" वाली दशा न रहेगी।

✓ स्मरण रखो, निरभिमानी और स्वार्थ त्यागी लेखक जिस जिस देश में उत्पन्न हुए हैं उन्होंने उस देश की भाषा को अजर और अमर बना दिया है। वाल्मीकि, वेदव्यास, कणाद,

कपिल, गौतम, पतञ्जलि आदि महर्षियों ने स्वार्थ त्याग कर लेखनी उठायी थी और जो कुछ लिखा वह अजर और अमर हो गया। आर्य्य जाति, आर्य्य सभ्यता लोप हो गयी, विदेशियों ने आर्य्य सन्तान को सैकड़ों वर्षों तक पाओं तले रौंद डाला, उनका इतिहास जला दिया, उनका मनुष्यत्व नष्ट करने में कोई कसर उठा न रखी पर जिन कवियों ने संस्कृत भाषा को मस्तक पर चढाया था वे इन शत्रुओं से अधिक दीर्घद्रष्टा थे, उन्होंने पत्थरों के स्तूप रचने की बजाय संस्कृत साहित्य के ऐसे स्तूप रचे, जिनकी जड़ें पाताल तक पहुंचा दी! आज भी उन स्तूपों पर लिखे हुए उपदेश सभ्य संसार में हमारा मुख उज्वल करते हैं और हमारे प्राचीन गौरव की रक्षा कर रहे है।

आओ हम उन प्राचीन साहित्य-सेवियों से शिक्षा ग्रहण कर उनके पथानुगामी हों। जैसे वे हमारे लिये पवित्र ग्रन्थ-रत्नों की जायदाद छोड़ गये हैं वैसे ही हम भावी भारत के लिये साहित्य स्तूपों की रचना करें। जैसे उन्होंने साहित्य के लिये स्वार्थ त्यागा था, हम भी उनकी भांति स्वार्थ त्याग कर साहित्य-सेवा पर कटिवद्ध हों। यद्यपि वे अपनी जाति के यौवनकाल में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने समृद्धिशाली स्वतन्त्र भारत में रह, उसके सुख का अनुभव कर अपनी लेखनी से उसकी छटा दिखलाई थी, पर हमारे लिये उनसे भी बढ़ कर अच्छा अवसर है। जाति के अच्छे गुणों की पहचान उसकी परीक्षा के समय होती है। आज हमारी परीक्षा का काल है। यदि आज हम काल की घृणित प्रलोभनाओं से बच कर शुद्ध साहित्य की रचना करेंगे तो निश्चय ही हम भावी सन्तान के लिये अपने प्राचीन गौरवों को पुनर्जीवित करने की सामग्री छोड़ जाएंगे। हमें उस साहित्य की रचना करनी है जो भारत

में सत्ययुग की नींव डालेगा। इसलिये उन वीरों की जीवनियों को तलाश करो जिन्होंने पिछले हजार वर्षों के अन्दर भारत के गौरव की रक्षा के हेतु अपना सिर दे दिया। उन धर्मपुत्रों के कार्यों की छान बीन करो जिन्होंने भारतीयधर्मरक्षा के हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। भारत के पतन का सही सही इतिहास, उसके सच्चे सच्चे कारणों सहित लिखा जाना चाहिए। पाश्चात्य देशों के गुण, उनका विज्ञान, उनका कलाकौशल, उनकी राजनीति का ब्योरा अपनी भाषा में लिख डालना चाहिये। लेखक वही है जो अपनी जाति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, उनमें नवजीवन भरने के लिये, लेखनी उठाता है। यह कार्य स्वार्थ त्याग किये बिना हो नहीं सकता।

गोस्वामी तुलसीदास जी का उदाहरण देखिये। उस काल जब कि संस्कृत का प्रचार करना कठिन था, हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों को सर्वसाधारण तक पहुंचाने की जरूरत थी। गोस्वामी जी ने अपनी रसीली भाषा मे ऐसे ग्रन्थ की रचना की जिसने भारत के सर्वसाधारण मे धर्मभाव भरने के लिये सञ्जीवनी बूटी का काम किया। भारतवर्ष अशिक्षित है, उसके करोड़ों बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा से भी वञ्चित हैं पर भारत का शायद ही कोई अभागा ग्राम होगा जहां तुलसीदास जी का सन्देशा किसी न किसी रूप में न पहुंचा हो। आहा! सच्चा लेखक क्या कुछ नहीं कर सकता। करोड़ों आत्माओं को सन्देशा देने वाले ग्रन्थ धन के लोभ से नहीं लिखे जाते। 'रूसो' ने अपना ग्रन्थरत्न धन के लिये नहीं लिखा था। रूस के पैगम्बर कौण्ट टालस्टाय ने स्वार्थ त्याग कर अपना सन्देश सुनाया था। धन के लोभ से ग्रन्थ लिखना साहित्य का गला घोंटना है। ऐसे रद्दी ग्रन्थ अपने पाठकों की बुद्धि

भ्रष्ट करते हैं। ऐसी पुस्तकों से बचो; उनको दूर से नमस्कार करो।

(५)

किसी भी भाषा के साहित्य में अनुवादक की गणना बड़े लेखकों में नहीं की गयी है। फ्रेञ्च, जर्मन भाषाओं के ज्ञाता अङ्गरेज़ अच्छी अच्छी पुस्तकों का अनुवाद कर अङ्गरेज़ी साहित्य का भण्डार भरते हैं, पर उनके देशबन्धु कभी भी उनको बड़े लेखक कह कर नहीं पुकारते। बहुत से विद्वान् जर्मनों ने फ्रेञ्च पुस्तकों का अनुवाद कर अपनी भाषा का भण्डार भरा है लेकिन उन अनुवादकों की गणना जर्मन लेखकों में नहीं की जाती है। इसका कारण स्पष्ट है। अनुवादक दूसरे के उच्च विचारों को अपनी भाषा की पोशाक पहनाता है। वह केवल दुभाषिया है जो किसी विदेशी भाषा के लेखक की बातों को अपने देश-बन्धुओं को समझाता है। वह केवल एक दलाल है जो विदेशी माल को अपने देश में लाकर कमीशन खाता है। उसका अपना कुछ दिमाग खर्च नहीं होता, उसकी अपनी कुछ पूंजी नहीं, वह केवल दूसरे के कौशल को दिखलाने वाला है।

इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य-सेवा के क्षेत्र में अनुवादक की भी उपयोगिता है, नहीं नहीं बडी भारी उपयोगिता है। वह बहुत कुछ उपकार कर सकता है पर 'लेखक' की पदवी उसे प्राप्त नहीं हो सकती। वह भाषा का पण्डित है, वह भाषा को लच्छेदार बना उसमें मनोरञ्जकता भर सकता है; वह शृङ्गार करने में उस्ताद है, उसको भाषा के मुहाविरे भी खूब याद हैं, वह दूसरों की भाषा में गलतियां भी पकड सकता है पर ये सब गुण, ये सब बातें, उसको अपनी भाषा का पथ-

प्रदर्शक लेखक नहीं बना सकती। केवल भाषा का ज्ञान लेखक बनने के लिये 'पर्य्याप्त' नहीं है। लेखक के लिये मुख्य गुण भाव है। उच्च भाव यदि तोतली भाषा में भी हों, उच्च आदर्श यदि जङ्गली ग्राम्य-भाषा मे भी कहे जांय तो भी वे उसके कहने वाले को 'लेखक' की पदवी से विभूषित कर देते हैं और बड़े बड़े भाषा-मर्मज्ञ उन आदर्शों की व्याख्या करने में अपना गौरव समझते हैं। क्योंकि यद्यपि मनुष्यों की भाषाएं भिन्न भिन्न हैं, उनके उच्चारण भिन्न भिन्न हैं, उनके व्याकरण अलग अलग हैं पर उच्च भाव, पवित्र आदर्श, आत्म स्थित उस दवी सूर्य्य की किरणे हैं जो ब्रह्मरूप सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक है, जिसका प्रकाश मनुष्य मात्र की साझी जायदाद है। 'लेखक' किसी खास देश, किसी खास भाषा, किसी खास जाति से सम्बन्ध नहीं रखता। वह ईश्वर के उन आज्ञाकारी पुत्र और पुत्रियों में से है जो 'न्याय' और 'धर्म' की स्थापना हित लेखनी उठाते हैं। भाषा तो केवल एक साधन है, मुख्य शक्ति दैवी गुणो का विकाश है। जिसका हृदय उस पवित्र शक्ति द्वारा विकसित नही हुआ, वह केवल शब्द जञाल की कोरी मशीन है।

इसलिये हिन्दी साहित्य प्रेमियों को सावधान हो कर चलना चाहिये। हिन्दीभाषा-भाषी, अनुवादकों को लेखक समझने लग गये है। हिन्दी पत्रिकायें अनुवादको के शब्द जञाल से भरी रहती है। अङ्गरेजी, उर्दू, बङ्गाली भाषाओं के लेखकों की पुस्तको का अनुवाद करने वाले 'लेखक' नहीं हैं। उनकी उतनी ही कदर करनी चाहिये जितनी के वे अधिकारी हैं। यदि अनुवादको को लेखकों की डिग्रियां दे देकर उनको पथ-प्रदर्शक समझा जायगा तो हिन्दी में मौलिक ग्रन्थों के लिक्खाड़ पैदा नहीं हो सकेंगे। अनुवादको की संख्या कम

करो; उनके ग्रन्थों की डुग्गी मत पीटो। अनुवादकों की आवश्यकता है। हिन्दी में वैज्ञानिक, ऐतिहासिक ग्रन्थों का अनुवाद होना चाहिए। अनुवादकों को उनके परिश्रम का पुरस्कार भी मिले, धन से उनकी सहायता भी की जाए, ख़ास ख़ास योग्य व्यक्तियों को आर्थिक उत्साह देकर अच्छे अच्छे अङ्गरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन ग्रन्थों का अनुवाद भी कराओ; पर ऐसा करते समय अपने भविष्य को मत भूल जाया करो। हिन्दी-साहित्य का गौरव डारविन, हक्सले, स्पेन्सर, नारमेन-एञल आदि अङ्गरेजी विद्वानो के ग्रन्थों के अनुवादों से नहीं बढ़ेगा, बल्कि हिन्दी-भाषा-भाषियोंके उन मौलिक ग्रन्थों से इसकी कीर्ति उज्ज्वल होगी, जो ग्रन्थ-रत्न भारतीय सामाजिक और राजनैतिक अन्याय की जड़ काटने वाले होंगे, जिनके द्वारा स्वार्थ, ईर्षा, द्वेष, विश्वासघात आदि शत्रुओं को परास्त किया जायगा, तथा जो सभ्य संसार में नवजीवन—नया प्रकाश—फैलाने मे अग्रगामी होंगे।

अब पाठक समझ गये होंगे कि, मैं 'अनुवाद' के विरुद्ध नहीं हू। मैने साहित्य-क्षेत्र मे अनुवादकों की स्थिति का निरूपण मात्र किया है, आप 'लेखक' और 'अनुवादक' के भेद को भली प्रकार समझ जायें इसलिये मैंने इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने का यत्न किया है।

(६)

यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो लेखक तीन प्रकार के दृष्टिगोचर होंगे। एक तो ऐसे लेखक है जो बिना सोचे समझे लिखते हैं। इनको लिखने की बीमारी है। ये धन के लोभ से लिखे, या ईर्षाद्वेष वश, या झूठे नाम की इच्छा से—इनकी लेखनी मशीन है—ये बिना विचारे लिख कर फेंक देते है। इनको सबसे निकृष्ट दर्जे का लेखक समझना चाहिये।

दूसरे लेखक वे हैं जो लिखते हुए सोचते हैं—साथ साथ लिखते जाते हैं और सोचते जाते हैं। उनको अपने पर झूठा विश्वास होता है। वे समझते हैं कि जब हम लिखने बैठेंगे तो हमारे दिमाग से विचार समुद्र उमड पडेगा। वे अपने 'शीर्षक' के लिये कुछ भी सामग्री इकट्ठी नहीं करते; उसके लिये पहले से कुछ भी तैयारी नहीं करते। ऐसे लेखक मध्यम दर्जे के लेखक हैं।

तीसरे और सब से श्रेष्ठ लेखक वे हैं जो अपने विषय को लिखने से पहले अच्छी प्रकार विचार कर लेते हैं, जो 'Look before you leap कूदने से पहले खूब देख भाल लो' वाली उक्ति पर चलते हैं। ऐसे लेखक बहुत कम हैं। ऐसे ही लेखकों से साहित्य का गौरव है।

इस प्रकार के सच्चे लेखकों के लेखों मे क्या गुण होते हैं? उन बनावटी लेखकों से इनमे क्या विशेषता होती है? इन प्रश्नों का उत्तर देता हूं।

(१) सब से पहला गुण इन लेखकों के लेखों में यह होता है कि इनके शब्दों का प्रभाव पड़ता है। जैसे आतशी शीशे को सूर्य्य के सामने करने से-उसका फोकस हो जाने से-किरण समूह में जलाने की शक्ति हो जाती है ऐसे ही विचारशील और वृत्तियो का निरोध करने वाला लेखक अपनी मानसिक शक्तियों को एकाग्र कर जब लेखनी उठाता है तो उसके शब्दों में जलाने की शक्ति आ जाती है। जो कोई उसके लेख को पढ़ता है उस पर उन शब्दों का विचित्र प्रभाव पड़ता है। यह बात बनावटी लेखक में कदापि नही आ सकती।

(२) सच्चा लेखक जिस समय अपने उद्देश्य को निश्चित कर-अपने सन्देशे की महत्ता को समझ कर-लिखना आरम्भ करता है तो उसके लेख में 'जीवन' आ जाता है। उसके शुद्ध

अन्तःकरण से निकले हुए शब्द उसके पाठक में जीवन प्रदान करते है। वह अपने विचारों से, अपनी सजीवनी शक्ति से एक एक शब्द मे जीवन फूंक देता है।

(३) यदि लेख में 'आनन्द' भरना हो, यदि शब्दों में 'सरूर' लाने की शक्ति डालनी हो तो वह बिना अपने आपको 'सरूर' मे डाले नहीं आ सकती। सच्चा लेखक जिस विषय को उठाता है उसके रङ्ग मे रङ्गा हुआ होता है। यह 'रङ्ग' युक्ति सगत लेख मे जो कायल करने की शक्ति होती है, उससे भिन्न है। धन कमाने की इच्छा से कागज़ काले करने वाले तथा ईर्षा द्वेष से कलमे तोडने वाले लेखकों मे यह गुण कदापि नही आ सकता।

(४) जैसे स्रोत से बहने वाला जल ताजा होता है और उसको पीने वाला शारीरिक पुष्टि लाभ करता है ऐसे ही दैवी अमृतसागर से सम्बन्ध रखने वाले लेखक-प्रवर के हृदय स्रोत से निकले हुए शब्द अपनी ताजगी (Freshness) से पाठकों के अन्दर आत्मिक बल भर देते है। उस आत्मिक बल से बलिष्ठ मनुष्य, कठिन से कठिन कार्य्य के करने मे भी नहीं हिचकता। क्या यह बात नक्काल, बनावटी लेखकों में आ सकती है ? कदापि नहीं। कदापि नहीं।

(७)

लेखक एक चित्रकार है जो अपनी सुन्दर, ललित वाक्य-रचना से नैसर्गिक, मानसिक और आत्मिक दृश्यों की छटा को दिखलाता है। रङ्ग बिरंगे भावों के द्योतक शब्दों को अपने लेखन-कौशल द्वारा प्रयोग मे लाकर वह भय, करुणा, वीरता, प्रेम, अभिमान आदि मानुषी लीलाओं का चित्र खींचता है।

परन्तु कोई भी चित्रकार अपने मन में गन्दे अश्लील आदर्शों को रख कर सती साध्वी सीता का चित्र नहीं खींच

सकता। वह मनुष्य जो स्वयं कायर है, महाराणा प्रताप की हल्दीघाटी के युद्ध का चित्र कैसे खींच सकता है? नौकरी करते करते खुशामद से जिनकी कमरें झुक गयी हैं वे महाराष्ट्र केसरी छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र लिख भारतोत्थान का सन्देशा कैसे दे सकते हैं? पुलिस के डर के मारे जिनका पेशाब निकलता है और झूठी खुशामद में जो पद्य रचना करते हैं वे भारत के राष्ट्र कवि कैसे बन सकते हैं? स्मरण रखो, लेखक बनने के लिये यह परमावश्यक है कि जिस भाव का चित्र आप अपनी पुस्तक में भरना चाहते हैं, उसका आदर्श आपके हृदयपट पर खचित होना चाहिये। बिना ठीक फोटो सामने हुए चित्रकार चित्र नहीं बना सकता। जब तक लेखक अपने आदर्श से भर न जाय, उसका लेखनी उठाना निरर्थक है। बड़े बड़े लेखकों ने अपना अधिक जीवन तैयारी में खर्च कर तब पुस्तकें लिखी थीं। वे अपने विषय में लीन हो कर, उसके सारे साधनों से सम्पन्न हो कर, तब लेखनी उठाते थे। भला वह कठोर हृदय मनुष्य, जिसने कभी भी अपने देश के दुखी भाइयों के लिये अश्रुपात नहीं किया, किस प्रकार भारत के दुर्भिक्ष का चित्र अपनी पुस्तक में खींच सकेगा? कदापि नहीं। जिसने करुणा रस का आस्वादन नहीं किया, जो दया के स्रोत से सम्बन्ध नहीं रखता, भला वह कैसे दूसरों के कष्ट को समझ सकता है।

इसलिये लेखक को सब से पहले अपना आदर्श, अपना विषय, निश्चित करना चाहिये। जब उसका उद्देश्य निश्चित हो जाय तब फिर उसके प्रत्येक साधन को इकट्ठा करने का उद्योग करना उचित है। उदाहरणार्थ यदि आप वीरकेसरी गुरू गोविन्दसिंह जी का जीवनचरित्र लिखना चाहते हैं तो आपको सब से पहले उस काल के इतिहास का पाठ करना

आवश्यक है जिसमें वे उत्पन्न हुए थे। उस काल का पूरा फोटो आपके मन में आ जाना चाहिये। सिखों और मुसलमानों के बीच में जो झगडा था, सिख धर्म में क्षात्रत्व शक्ति प्रधान होने के जो कारण थे, उनकी गाथा विस्तार से जानना उचित है। इसके बाद उन स्थानो नगरों में जाना आवश्यक है जिनके साथ गुरु गोविन्दसिंह जी की जीवनी का विशेष सम्बन्ध है। पञ्जाब के माझा मालवा प्रान्त का भ्रमण अच्छी प्रकार होना चाहिये। जब उस महापुरुष की जीवन कथा से सपूर्ण सम्बन्ध हो जाय तब फिर लेखनी उठानी चाहिए। इतने परिश्रम के बाद जो ग्रन्थ लिखा जायगा वह अपने ढङ्ग का अकेला ही होगा।

पर हिन्दी-साहित्य-संसार की दशा बडी विचित्र है। यहाँ भांग छानने वाले, नाच देखने वाले, सत्य की अवहेलना करने वाले हिन्दू समाज के उपन्यास लिखते हैं। आदर्श हिन्दू समाज कैसे उच्च भावों के द्योतक शब्द हैं, उन उच्च भावों का चित्र खींचने के लिये कैसे पवित्र हृदय की आवश्यकता है। प्रभु के दैवी स्रोत से सम्बन्ध हुए बिना, क्या आदर्श हिन्दू समाज के अलौकिक गुणों—ब्रह्मचर्य, सतीत्व धर्म, सत्यव्रत, कर्मनिष्ठा, श्रद्धा, भक्ति आदि—के दिव्यदर्शन कोई लेखक अपनी लेखनी द्वारा हमे करा सकता है? कदापि नहीं। दुकानों पर बैठ कर झूठ मूठ सौदा तौलने वाले, अदालत में जाकर झूठे मुकदमे लडने वाले, नौकरी की जञ्जीरों में जकड़े हुए खुशामदी अपनी लेखनी द्वारा किसी जाति के पथप्रदर्शक नहीं बन सकते। हिन्दी का यह दुर्भाग्य है कि इसका साहित्य ऐसे ही लोग भर रहे हैं। पर यह दशा शीघ्र सुधरेगी। ज्यों ज्यों लोगों में शिक्षा होने से परख करने की शक्ति

आती जायगी त्यों त्यों अच्छे लेखकों का आविर्भाव होता जायगा।

(८)

लेखक को पुस्तक का नाम सोच विचार कर रखना चाहिये। नाम ऐसा हो जिसके सुनने से ही पुस्तक के विषय का पता लग जाय। भ्रम पैदा करने वाला नाम रखना उचित नहीं। एक सज्जन मुझसे मिलने आये। उनके हाथ में एक पुस्तक थी। पूछने पर मालूम हुआ कि उस पुस्तक का नाम 'आत्मप्रकाश' है। मैंने समझा कि वेदान्त का ग्रन्थ होगा। जब उस सज्जन ने मुझे बतलाया कि यह वैद्यक का ग्रन्थ है तो मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। नाम 'आत्मप्रकाश' और हो वैद्यक की पुस्तक! उस लेखक ने ऐसा भ्रमोत्पादक नाम क्यों रखा था? मालूम हुआ कि लेखक का नाम 'आत्माराम' था, उसी अपनी आत्मबुद्धि के प्रकाश हेतु उसने अपने ग्रन्थ का नाम 'आत्मप्रकाश' रखा था।

लम्बा नाम भी किसी काम का नहीं होता। नाम छोटा पर विषय द्योतक होना चाहिये। लम्बे नाम भद्दे मालूम होते हैं। उनका स्मरण रखना कठिन हो जाता है। छोटा नाम हो और साथ ही अर्थ मे भी सरल हो। ऐसा न हो जिसके अर्थ समझने में 'भाषा शब्दसागर' में गोता लगाना पड़े। हिन्दी कविता की एक नयी पुस्तक छपी है उसका नाम है—प्रिय-प्रवास। 'प्रियप्रवास' नाम छोटा है पर अपने विषय का द्योतक नही है। मेरे जैसा पुरुष उस नाम से कुछ भी चित्र अपने सामने नही ला सकता। ऐसा बेडा नाम नहीं रखना चाहिये। इस नाम से क्या कोई जान सकता है कि इस पुस्तक में भगवान् कृष्ण के प्रेम-रहस्य की गांठे है, या कृष्णचन्द्रजी की

प्यारी राधाजी की जीवनी के साथ इसका कुछ सम्बन्ध है। ऐसा नाम रखना ठीक नहीं।

पुस्तक का ऐसा नाम भी रखना ठीक नहीं जो चुराया हुआ मालूम हो। दूसरी किसी अच्छी पुस्तक का नाम चुराना लेखक में मौलिकता का अभाव सिद्ध करता है। लेखक को सदा इससे बचना चाहिये। पण्डित माधव शुक्लजी ने अपनी पुस्तक का नाम 'भारत-गीताञ्जलि' रख कर बडी भूल की है। बङ्गकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताञ्जलि' के प्रसिद्ध होने के बाद अपनी पुस्तक का नाम 'भारत-गीताञ्जलि' रखना अनुचित था। उनको कोई नया फड़कता हुआ नाम घड़ना था। किसी की छाया के नीचे चलना निर्वलता का चिन्ह है, जहां तक हो सके अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करना चाहिये। और फिर 'भारत-गीताञ्जलि' में वैराग्य और खण्डनमण्डन के गीत तो बिलकुल शोभा नहीं देते, उसमें केवल देशभक्ति के गीत होने चाहियें।

मैं अन्त में हिन्दी प्रेमी सज्जनों से प्रेमपूर्वक क्षमा चाहता हूं। मैंने जो कुछ कहा है वह देशसेवा के नाते से कहा है। मैं चाहता हू कि हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़े; इसका मुख उज्ज्वल हो। मैं अपने देश के बच्चों के हाथों में शुद्ध साहित्य की पुस्तकें देखना चाहता हू। इसीलिये 'लेखन-कला' सम्बन्धी कुछ विचार प्रकट किये हैं। यह विषय बहुत बडा है। इसपर अच्छी प्रकार विवेचना करने के लिये बहुत समय चाहिये, तो भी मैं लेखन-कला सम्बन्धी कुछ अत्यावश्यक नियम तथा सूचनायें अपने प्रेमी पाठकों के उपकारार्थ लिखता हू। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी-संसार को उनसे बहुत कुछ लाभ पहुंचेगा।

—:०:—

लेखन-कला

प्रारम्भिक बातें

लेखन-कला की परिभाषा में, विचारों को नियमानुकूल सूत्रबद्ध करने की शैली को निबन्ध-रचना अथवा प्रबन्ध कहते हैं। किसी एक विषय पर अपने विचारों को स्पष्ट और सरल भाषा में प्रगट करने का नाम निबन्ध-रचना है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि कुछ कहा जाए—कुछ कहने की सामग्री हो, उसको अच्छी प्रकार साधुभाषा में कहना, यह दूसरा लक्ष्य है।

बहुत से लोग लेखन-कला को शब्द-जाल की माया तथा मन के हवाई घोड़े दौड़ाने वाली कल्पना-शक्ति समझते हैं। उनकी सम्मति में यह एक ऐसी कला है जो इने गिने लोग ही जान सकते हैं। उन्होंने इन कला-सम्पन्न व्यक्तियों का पृथक वर्ग स्थिर कर लिया है। वे इसको लौकिक-व्यवहार का साधन नहीं समझते, बल्कि वे इसे मन के मोदक खिलाने वाली, रंग बिरंगे शब्दों से भाषा को अलंकृत करने वाली मनमोहिनी अप्सरा मानते हैं।

उनकी यह भारी भूल है। लेखन-कला का हमारे व्यव-हारिक जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह साहित्या-चार्य्यों का न्यारा पन्थ कायम नहीं करती, बल्कि मनुष्य को मनुष्य के साथ मिलाने, उनमें भ्रातृ-भाव पैदा करने, उनको ईश्वर-रचित पदार्थों का आनन्द-रस पान कराने का मुख्य साधन है। समाज में जितने झगड़े फसाद फैले हुए हैं, जो कुछ ईर्षा-द्वेष देखने में आता है, वह अधिकांश आपस में ठीक समझौता न होने के कारण है। जरा सी गलतफहमी से सैकड़ों हजारों के वारे न्यारे हो जाते हैं, शब्दों के थोड़े से हेर फेर से कुछ का कुछ हो जाता है। इसलिये पाठशालाओं तथा स्कूलों में लेखन-कला की शिक्षा अत्यावश्यक है। प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को इसका अभ्यास करना चाहिए। "मैं इस विषय को जानता तो हूं पर समझा नहीं सकता"—ऐसा हमने बहुत से पढ़े लिखे बन्धुओं को कहते सुना है। भला जब हम अपने विचारों को, अपने भावों को, दूसरों के सामने प्रगट नहीं कर सकते तो फिर समाज में एकता, प्रेम और उन्नति कैसे हो सकती है। निबन्ध-रचना सिखलाने का अभि-प्राय यही है कि हम शब्दों का यथार्थ उपयोग जानें, उनका ठीक ठीक प्रयोग सीखें, ताकि हम कठिन से कठिन विषय को भी सीधी सादी सरल भाषा में दूसरों को समझा सकें। तभी भाषा सार्थक हो सकती है और हमारे जीवन का उद्देश्य भी तभी पूर्ण हो सकता है।

निबन्ध-रचना के इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ लेखक की जीवन-चर्य्या का गहरा सम्बन्ध है। उसी लेखक की भाषा में बल आ सकता है जिसके चरित्र में बल हो। यदि आप अपने लेख में शुद्धता भरना चाहते हैं तो इसके लिए शुद्ध विचार की आवश्यकता है। जिसका अपना जीवन पवित्र

नहीं है उसके लेख में पवित्रता कहां से आ जाएगी । जो लोगों को दिखलाने के लिए—धोखा देने के लिए—अस्वाभाविक तौर पर अपनी प्रवृत्ति के विरुद्ध बन कर चलते हैं, वे स्वय धोखा खाते है । जिस कला-कौशल में प्रवीण होकर हम ससार में कुछ करना चाहते हैं उसका हमारे व्यवहारिक जीवन—हमारी नित्य की दिनचर्य्या—के साथ बड़ा भारी सम्बन्ध है । किसी विद्वान् ने सच कहा है—

"Style is the man himself."

लेखन-शैली लेखक का अपना स्वरूप है । नवयुवक हिन्दी लेखकों को यह उक्ति अपने हृदयपट पर लिख लेनी चाहिये ।

—·o·—

विषय

१ **विषयों की अभिज्ञता**—जब किसी विषय पर कहने अथवा लिखने की इच्छा हो तो विद्यार्थी को अपनी योग्यता, रुचि, अनुभव और शक्ति—इन चार बातो को—देख लेना चाहिए । जिस विषय का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, जो उसकी रुचि के प्रतिकूल है, जिसका उसे कुछ भी अनुभव नहीं, ऐसे विषय पर लेखनी चलाना समय को व्यर्थ खोना है । जिसके पास निज की कुछ भी पूजी नहीं है उसे निबन्ध-रचना में हाथ नहीं डालना चाहिए । आप उस विषय के सम्बन्ध में क्या जानते हैं ? आपका उसके सम्बन्ध में क्या

अनुभव है? आपका उद्देश्य क्या है? आपके पास निज की सामग्री कितनी है? ऐसे ऐसे प्रश्नों द्वारा पहले अपनी स्थिति ठीक कीजिए। जब सामग्री जुट जाए तो फिर लेख लिखने में बड़ी आसानी हो जाती है।

२ **विषय-तत्व**—जो नौसिखिए हैं उन्हें धैर्य्य, क्षमा, आशा, सन्तोष आदि अमूर्त अथवा सात्विक विषयों पर कलम चलाना उचित नहीं। उन्हें पहले नित्य की साधारण बातों पर—मामूली खेल कूद आदि विषयों पर—कुछ लिखने का अभ्यास करना ठीक होगा। उन्हें पहले निरीक्षण करने की आदत डालनी चाहिए। अमूर्त और अनभ्यस्त विषयों पर लेख लिखने से उनकी मानसिक-प्रवृत्ति बिगड़ जायगी और वे निश्चित विचारशील न बन सकेंगे।

३ **निबन्ध की सीमा**—एक बात और भी। जिस शीर्षक पर निबन्ध लिखना हो उसकी सीमा बांध लेनी उचित है। विषय जितना सूक्ष्म होगा उतनी ही आसानी विषय-पूर्ति में होगी। उदाहरणार्थ किसी ने अपने निबन्ध का शीर्षक "जल" अथवा "फोटोग्राफी" या "स्वामी रामतीर्थ" रखा। ऐसे शीर्षक की पूर्ति करना लेखक के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। उसको अधिक सामग्री जुटानी पड़ेगी, लम्बा चौड़ा लेख लिखना होगा, अपने विषय को विस्तार पूर्वक कहने के लिए वह बाध्य हो जाएगा। इसलिए उन शीर्षकों की बजाए—"जल की बनावट", "फोटोग्राफी का शिक्षा पर प्रभाव", "स्वामी रामतीर्थजी का देशहित"—इस प्रकार विषयों की सीमा निर्धारित कर देने से लेखक को लेख लिखने में बड़ी आसानी हो जाएगी और वह उसे अच्छी प्रकार लिख सकेगा। निम्नलिखित विषयों को सूक्ष्मरूप में लाइए—

१.	वायु	६.	मनुष्य जन्म
२.	पुस्तकावलोकन	७	विद्या
३.	स्वामी दयानन्द	८.	हिन्दी-साहित्य
४	नीति	६	देश-भक्ति
५	देश-सेवा	१०.	मूर्ति-पूजा

४ **विषय-भेद**—लेखन-कला में विषयों के चार स्वाभाविक भेद हैं—कथात्मक, वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, और तार्किक। अंग्रेजी में इनको Narrative, Descriptive, Expositary और Argumentative कहते हैं। उपाख्यान प्रायः कथात्मक होते हैं, यात्रा में विशेष कर वर्णन की अधिकता होने से उसे वर्णनात्मक समझिए। उपन्यासों में दोनों का मेल होता है। वैज्ञानिक लेख अथवा विद्वत्ता-पूर्ण निबन्ध व्याख्यात्मक होते है। धार्मिक, दार्शनिक और राजनैतिक विषयों की मीमांसा करने वाले लेखों की गणना तार्किक में की जाती है। इतिहास में प्रथम तीन किस्मों का मेल होता है, और यदि इतिहासकार चार कदम आगे बढ़ कर किसी विषय पर अपनी तर्क लड़ाने लगता है तो चारों भेदों का समावेश केवल इतिहास में हो जाता है। अब हम प्रत्येक भेद की पृथक पृथक व्याख्या करते है—

(क) कथात्मक निबन्ध वह है जिसमें किए हुए—दुखान्त, सुखान्त—कार्य्यों की कथा हो, अर्थात् जिसमें उन अनुभवों या चेष्टाओं का जिकर हो जिनका समय-स्थित घटनाओं के साथ सम्बन्ध है। वह घटना चाहे किसी एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र के रूप में हो अथवा इतिहास में।

(ख) जो निबन्ध आकाश-स्थित प्राकृतिक पदार्थों का याथातथ्य निरूपण करते हैं, जो व्यक्तिओं के गुण और उपा-

धिओं का बखान करते हैं, वे वर्णनात्मक कहाते हैं। असल में वर्णनात्मक निबन्ध छोटे होते है। उनका समावेश वैज्ञानिक या साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों में मिलना है।

(ग) व्याख्यात्मक और वर्णनात्मक निबन्धों में भेद यह है कि पहला कई एक व्यक्तिओ या समुदाय के विषय में कहता है और दूसरा एक के विषय में। व्याख्यात्मक निबन्ध में व्यापक (Geneɪal) अथवा अमूर्त (Abstraot) विषय की व्याख्या की जाती है और वर्णनात्मक में किसी खास एक दृश्य अथवा व्यक्ति के गुणों का बखान होता है।

(घ) तार्किक निबन्ध वे हैं जिनमें किसी प्रस्ताव की सत्यता या असत्यता का निर्णय किया जाए। इसका प्रस्तार भी विषय के अनुसार होता है।

विषय-भेदों के उदाहरण

कथात्मक

१ शिकागो मे मेरी प्रथम रात्रि।
२. बोस्टन से मानचेस्टर।
३, सिकन क्लास का साहेब।
४ वीर बालक।
५. मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ।
६ विश्वासघात का घोर दण्ड।
७. जमवा झील की सैर।

वर्णनात्मक

१. सूदखोर काबुली ।
२. मेरा कमरा ।
३. नन्दा देवी की अनुपम छटा ।
४. कैलाश दर्शन ।
५. शिकागो-विश्वविद्यालय ।
६. एलास्का यूकन-पेसेफिक-प्रदर्शिनी ।
७. मिस पारकर का स्कूल ।

व्याख्यात्मक

१. कबड्डी का खेल ।
२. राजनीति विज्ञान ।
३ शासन सम्बन्धी वार्तालाप ।
४ अमरीका की स्त्रियां ।
५. शिक्षा का आदर्श ।
६. जीवन क्या है ।
७. नील का व्यवसाय ।

तार्किक

१ प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता ।
२ क्या मांस मनुष्य का भोजन है ?
३ भारत में कौन सी शासन पद्धति लाभकारी हो सकती है ?
४ जीव अणु है या विभु ?
५ कुली प्रथा की बुराइयां ।

ऐसे विषय जिनमे कथात्मक, वर्णनात्मक तथा व्याख्यात्मक गुण मिले हुए हैं, बहुत हैं। "मेरी कैलाश-यात्रा" में

पहले दो मिश्रित हैं । "भावी-विप्लव" में तीनों का थोड़ा बहुत समावेश है । इसी प्रकार–'सत्य-ग्रन्थ-माला' की पुस्तकों में बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं ।

१–इसकी प्राप्ति—निबन्ध के लिए सामग्री जुटाने के दो मुख्य साधन है । मनुष्य का अपना अनुभव और दूसरों का अनुभव-जन्य ज्ञान । अपने अनुभव से मनुष्य भ्रमण सम्बन्धी पुस्तकें, विज्ञान सम्बन्धी मौलिक वर्णनात्मक लेख, महापुरुषों की जीवन-घटना अथवा अपनी निज की जीवन-चर्य्या लिख सकता है । और यदि उसकी कल्पना-शक्ति ईश्वर दत्त हुई तो वह अपनी मानसिक उड़ान से सामग्री जुटा उत्कृष्ट कविता या गद्य लिख सकता है । ऐसे लोग है जिन्होंने अधिक भ्रमण नहीं किया, परन्तु उन्होंने दैवी-दृष्टि से देख कर जो कुछ लिख दिया, वह अजर और अमर हो गया । ऐसी आत्मायें विरली होती हैं । दूसरा साधन इतिहास या विद्वानों के लिखे हुए वृहत् ग्रन्थ हैं । महाभारत और रामायण दो हमारे पूज्य ग्रन्थ हैं । सैकड़ों लेखकों को उनके पाठ से प्रेरणा मिली और भविष्य में मिलेगी । इसी प्रकार टाड साहेब के राजिस्थान के इतिहास में से भिन्न भिन्न घटनाओं को लेकर लेखकगण अपने जौहर दिखाते है ।

(क) सामग्री जुटाने का सब से प्रथम ढंग, जो व्यक्ति को सच्चा लेखक बनाता है, यह है कि—

"अपनी आखें खोल कर चलो।"

इससे स्वयं निरीक्षण करने की शक्ति आती है और दैवी गुणों के विकास का साधन प्राप्त होता है। हां, यह आवश्यक है कि देखने की भी बुद्धि होनी चाहिए। बहुत से लोग देखते हुए नहीं देखते, और सुनते हुए नहीं सुनते। फ्रांस का प्रसिद्ध लेखक डीमुपाज़ां कहता है—

"निरीक्षण करने की उत्कृष्ट शक्ति यही है कि जिस दृश्य को आप वर्णन करने लगे हों, उसे ध्यान पूर्वक देखने से आप कोई ऐसी विशेष बात ढूंढ निकालें जो किसी दूसरे ने न कही हो।" अपने विषय के सामने बैठ जाओ और एक कुशल चित्रकार की भांति उसका सच्चा चित्र खींचो।

जितने बड़े बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए हैं, जिन्होंने अपने निज अनुभव-जन्य ज्ञान से संसार को आनन्दित किया है, वे प्रकृति के सच्चे उपासक थे। वे सदा आँखें खोल कर चलते थे और अपने इर्द गिर्द की छोटी छोटी बात को अपने अन्दर रख लेते थे। उनके उस अमोघ ख़ज़ाने में भिन्न भिन्न प्रकार के संस्कारों का संग्रह रहता था, और वे फुरसत के समय उन संस्कार रूपी पुष्पों को तरीके से सजा कर रंग बिरंगे गुल-दस्ते बनाते थे। उनके गुलदस्तों से निकली हुई सुरभि साहित्य-क्षेत्र को सुगन्धित करती थी। इसलिए लेखक काग़ज़ पेन्सिल सदा साथ रखे, और जो कुछ देखे उसको नोट करता जाय।

स्वतन्त्रता से सामग्री इकट्ठी करने का अभ्यास डालने के लिए निम्नलिखित ढंग उपयुक्त हैं—

(१) सबेरे उठ कर घूमने जाइए। रास्ते में जो कुछ अत्यन्त रुचिकर जचे उसको नोट कीजिए। उसे इस ढंग से लिखिए कि भविष्य में जब कभी उसी प्रकार की सैर का वर्णन करना हो तो वे नोट अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हों।

(२) किसी अत्यन्त परिचित सड़क पर घूमने जाइये और ऐसी कोई वस्तु तलाश कीजिए जिस पर पहले कभी आपका ध्यान ही न पड़ा हो। उसको भी नोट कर लीजिए।

(३) अपने कमरे का ऐसा छोटा, परन्तु सुथरा, वर्णन लिखिए कि जो किसी दूसरे कमरे से समता न रखता हो।

(४) तीन ऐसे विशेषण अपने किसी प्यारे मित्र के लिए, तलाश कीजिए जो आपके किसी अन्य मित्र पर न घट सकें।

(५) एक सप्ताह की दिनचर्य्या लिखते रहिए। सप्ताह के बाद उस पर—'मेरे जीवन के सात दिन'—शीर्षक देकर एक छोटा निबन्ध लिख डालिए।

(६) अमरीका-भ्रमण में से दो सप्ताह की दिनचर्य्या लेकर अमरीकन-छात्र-जीवन पर एक छोटा पच्चीस सतरों का लेख लिखिए।

(७) सरस्वती, मर्य्यादा, हिन्दी-चित्रमय जगत, प्रभा, किसी एक पत्रिका के वर्षभर के अंकों में से, शिक्षा सम्बन्धी जो लेख हों, उनका सार अपने शब्दों में लिख डालिए।

(८) श्रीतिलक महाराज के गीता रहस्य की प्रस्तावना पढ़ कर ग्रन्थकार के ग्रन्थ-रचना के उद्देश्य पर एक सुन्दर निबन्ध लिखिए।

इस प्रकार अभ्यास करने से लेखक को स्वतन्त्र सामग्री इकट्ठा करने की आदत पड़ जायगी और उसे निबन्ध-रचना का आनन्द आने लगेगा।

(ख) सामग्री प्राप्त करने का दूसरा ढंग यह है कि दूसरों के अनुभव से फायदा उठाया जाय। इसके दो साधन हैं। प्रथम तो वे पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ, ताम्रपत्र, सरकारी रिपोर्टें आदि हैं जिनमें भिन्न भिन्न प्रकार की सामग्री तो है, पर उनमें से सार वस्तु निकालने की बुद्धि चाहिए। ऐसी पुस्तकों से लाभ उठाने वाले को बड़ी इमान्दारी से काम करना होगा। अट का सट नकल करने वाला और अर्थ का अनर्थ करने वाला अपने लेखक-पन के कर्तव्य का पालन नहीं करता। वह दूसरों को धोखा देकर केवल अपनी कीर्ति में कालिमा लगाता है।

सामग्री प्राप्त करने का दूसरा साधन नवीन और प्राचीन ग्रन्थकारों के भिन्न भिन्न विषयों के ग्रन्थ हैं। जिस ग्रन्थ से जो सामग्री ली जाय, उसके मूल लेखक का धन्यवाद सदा स्वीकार करना चाहिए। खास खास उच्च कोटि के ऐसे भी लेखक हुए हैं जिन्होंने दूसरों की सामग्री लेकर उस पर अपना ऐसा पक्का रंग चढ़ाया है कि उस सामग्री में बिल्कुल नवीनता आ गयी है कुशल लेखक अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को उसमें भर उस सामग्री का रूप बदल देता है। अंग्रेज़ी में इसी कोटि के लेखक—मेकाले और इमरसन—हुए हैं। परन्तु सब किसी के लिए यह मार्ग नहीं है। निबन्ध-रचना सीखने वालों को दूसरों की सामग्री चुराने की आदत कभी नहीं डालनी चाहिए। वे जब कहीं से कुछ लें तो उसे अवतरण-चिन्हों में रख दें, जिससे पाठक को मालूम हो जाय कि यह कहीं का उद्धृत वाक्य है।

२—सामग्री का उपयोग—सामग्री इकट्ठी करने के बाद दो बातों का ध्यान रखना होगा। एक तो यह कि कौन सी सामग्री काम आने योग्य है और दूसरे यह कि कौन सी धर रखने के

लिए है। विषय के शीर्षक को सदा आँखों के सम्मुख रखना चाहिए। कोई ऐसी सामग्री काम में न लाई जाय, जिसका उक्त विषय से सीधा अथवा स्पष्ट सम्बन्ध न हो। धींगा धींगी, खींचातानी से, असंगत बातों से लेख को लाद देना लेखक में विचार-शक्ति की निर्बलता सिद्ध करता है। विषय की सीमा को ध्यान में रख कर जो कुछ कहा जाय, वह सब बराबर विषय का पुष्टिकारक हो. यदि आपका विषय "भारत-वर्ष का इतिहास" है तो उसमें वेद, भागवत, कुरान, और अंजील का मुकाबिला तथा ईश्वरीय-ज्ञान के झगड़ों का पचड़ा लाना पाठकों का समय नष्ट करना है। निबन्ध-लेखकों में व्यवच्छेदक-शक्ति का होना परमावश्यक है।

जो विषय वैज्ञानिक और शिक्षा प्रद हैं, और जिन्हें सर्वांग-पूर्ण लिखना है, उनके स्पष्टीकरण में तो भले ही उस सम्बन्ध की सभी बातें कह दीजिए, परन्तु जो विषय दूसरों के मनोरञ्जनार्थ लिखे जाते हैं, जैसा कि प्रायः साहित्य में होता है, उनमें अधिकांश बातें तो केवल इशारे से सुझाई जाती हैं और बहुत सी बातें बिल्कुल छोड़ दी जाती हैं ताकि पाठक ऊब न जायें। क्योंकि—

"The art of boring people is to tell every thing."

दुनियाँ भर की बातें ठूंस देना ही श्रोताओं को उबा देने का साधन है। कोई भी लेखक अपने पाठकों की उपेक्षा कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रकार के पाठकों को उसे अपने सत्य-सिद्धान्त अथवा अपने उन्नत विचारों को बतलाना है, उनकी योग्यता, उनके धार्मिक भाव, उनके पक्ष-पात—इन सब बातों का ध्यान रख कर उसे लेख लिखना उचित होगा।

लेख की लम्बाई का प्रश्न भी बहुत सी बातें तै कर देता है। यदि छोटा लेख लिखना है तो मुख्य मुख्य बातों, उदाहरणों तथा तर्कों को लिखकर ही लेख की पूर्ति करनी पड़ेगी। जो ख़ास बात हम कहना चाहते हैं उसी को प्रधानता देकर अपने मत को पुष्ट करना होगा; उसी के विस्तार को अधिक स्थान दिया जायगा। उदाहरण अधिक उपयोगी होते हैं, परन्तु उनमें से भी जो स्पष्ट रीति से हमारा अभिप्राय सिद्ध करें वे ही काम में लाने ठीक होंगे। लेखक के लिए प्रायः अपनी विस्तृत सामग्री को सुरक्षित कर, लेख की सीमा तदनुकूल करना अधिक उपयुक्त होता है। क्योंकि—"Condensation is a safer process than expansion"—विस्तार से बात कहने की अपेक्षा थोड़े में कहना अधिक नीति-संगत है। परन्तु इसका फ़ैसला भी लेख के परिमाण पर निर्भर है।

सच तो यह है कि लेखन-कला में वही व्यक्ति निपुण होगा जिसके पास भरपूर सामग्री हो, और वह उसमें से थोड़ा ही भाग अपने पाठकों को दे। लेखक की दशा ठीक उस सेनापति की तरह है जिसके पास काफ़ी फ़ौज युद्ध करने के लिए है, और जो अवसर के अनुकूल थोड़े बलिदान से अपना युद्ध कौशल दिखलाता है। उसको अपने ऊपर दृढ़ विश्वास होता है। इसी प्रकार लेखक और पाठक दोनों तभी विश्वास से परिपूर्ण रहेंगे यदि वे जानेंगे कि अभी बहुत सी सञ्चित सामग्री धरी है, ख़ज़ाना ख़ाली नहीं हो गया। उत्कृष्ट निबन्ध-रचना का यही रहस्य है। अपने आपको सामग्री से भर लो। जहां तक आपकी पहुंच है वहां से जो कुछ आपको अपने विषय पर प्रकाश डालने के लिए मिलता है, उसे ले आओ; ख़ूब सामग्री जुटाओ। जितनी अधिक सामग्री आपके पास है उतनी ही सुगमता आपको अपने

विषय के प्रतिपादन करने में रहेगी, और आपके श्रोता उतनी ही अधिक श्रद्धा से आपकी बात सुनेंगे। आप स्वेच्छानुकूल शब्द चुन सकेंगे, स्वतन्त्रता से उदाहरणों का चुनाव होगा; अच्छी से अच्छी दलीलें सूझेंगी, मोतिओं की भांति प्रत्येक तत्व—प्रत्येक घटना—को माला में पिरो सकेंगे। सच्चा लेखक बनने का यही श्रेष्ठ मार्ग है।

३—सामग्री का संगठन—जब सामग्री इकट्ठी हो जाय तो उसका बड़ी चतुराई से संगठन करना चाहिए। सब से पहले 'संघ' इस शब्द के अर्थ समझ लीजिए। अवयवों का समुदाय जब किसी विशेष उद्देश्य के निमित्त संगठित किया जाय तो उसको संघ कहते हैं। प्रत्येक संघ के कई अवयव होते हैं, परन्तु यह (संघ) अवयवों का समूह नहीं है। प्रत्येक अवयव का एक दूसरे के साथ आवश्यक सम्बन्ध है, केवल निकटस्थ सम्बन्ध ही नहीं है। वे एक दूसरे पर ऐसे निर्भर हैं कि उनका भिन्न अस्तित्व रह ही नहीं सकता। इस सहजीवी और आवश्यक सम्बन्ध के कारण संघ में एकता आती है उसको हम एक जुदा वस्तु कहते हैं। यदि आप शरीर के अंग—हाथ—को काट डालें तो वह अंग पृथक होने से नाकारा हो जाता है। जैसे शरीर एक संघ है और इसमें भिन्न भिन्न अवयव अपना जुदा जुदा उद्देश्य रखते हुए भी शरीर के मुख्य धर्म के हेतु जीते हैं, परन्तु शरीर से पृथक होते ही उनका अस्तित्व मिट जाता है. इसी प्रकार लेख रूपी शरीर के प्रत्येक अंग एक दूसरे के साथ इस प्रकार संगठित होने चाहियें कि एक, दूसरे के बिना, वे जी ही न सकें। यही लेख-सामग्री का संगठन कहलाता है।

(क) लेखन-कला की परिभाषा में सामग्री-संगठन के प्रथम गुण को एकता (unity) कहते हैं। इस एकता के भिन्न

भिन्न अंग होते हैं; उन अंगों को भी भिन्न भिन्न खण्डों में विभक्त किया जाता है। यह एकता उन्हीं पृथक पृथक खण्डों, विभागों तथा अंगों को सहजीवी सिद्धान्त पर मिलाने से आती है।

• (ख) संगठन का दूसरा गुण यौक्तिक-क्रम (Logical Sequence) है। अर्थात् प्रत्येक अंग एक दूसरे के बाद स्वाभाविक गति में रखा जाना चाहिए। लेख मे इस क्रम के लाने के निमित्त दो प्रधान बातो का देखना उचित है—प्रथम समय, दूसरा कारण कार्य्य सम्बन्ध। प्रथम की आवश्यकता कथात्मक लेखों में पड़ती है और दूसरे की तार्किक लेखों में। व्याख्यात्मक में दोनों का उपयोग है। वर्णनात्मक में हम वस्तु का यथातथ्य वर्णन करते हैं इसलिए उसमें जो जो पदार्थ हमारे सामने आते जाते हैं उनको उसी सिलसिले में वर्णन करते हैं। कभी किसी विशेष गुण पर तुरन्त दृष्टि पड़ती है तो उसी का वर्णन प्रथम होता है, और बाद में अधिक ध्यान से देखने पर अन्य गुणों का वर्णन करते है। परन्तु इसमें भी भिन्न भिन्न लेखकों का भिन्न भिन्न ढंग होगा। एक वैज्ञानिक किसी उद्यान का वर्णन करते समय अपने विकास सिद्धान्तानुसार उसकी प्रथमावस्था पर अवश्य कुछ न कुछ कहेगा, किन्तु एक साधारण व्यक्ति, पाठकों की मानसिक कल्पना-शक्ति को जगा कर, जो जो पदार्थ उसके सामने आते जायँगे उनको वह तदनुरूप कह डालेगा। उसके लिए यही स्वाभाविक ढंग है। सौ बातों की एक बात यह है कि लेखन शैली में कोई न कोई स्वाभाविक क्रम होना चाहिए अर्थात् उसका किसी न किसी ढंग पर विकास होना उचित है।

(ग) लेख में गौरव अथवा प्रभाव (emphasis) का होना भी भारी गुण है। इच्छानुकूल प्रभाव डालने के लिए सब से

प्रथम अंगों का विस्तार निश्चित करना है। जिस बात पर आप अत्यन्त बल देना चाहते हैं, जिसकी ओर आप अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करने की अभिलाषा रखते हैं, उस बात को मुख्य रख लीजिए। प्रभाव डालने के स्थान लेख के प्रारम्भिक और अन्तिम भाग हैं। सारे निबन्ध में, प्रभाव डालने का मुख्य स्थान, अन्तिम भाग है। सारे लेख में बराबर गौरव भरने से उस गौरव का बल कम हो जाता है। साधारण बातों को आरम्भ में स्थान देना चाहिए; विशेष कर उस दशा में, यदि उनके कथन से, विषय मे प्रवेश होता हो, नहीं तो लेख के मध्य में साधारण सामग्री को स्थान देना चाहिए। यह नियम कथात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक लेखों के लिए है।

४–निबन्ध का ढांचा—निबन्ध-रचना से पहले उसका ढांचा बना लेना बड़ा जरूरी है। यद्यपि सैकड़ों पुस्तकें ऐसी लिखी गयी हैं कि जिनका सिद्ध-हस्त लेखक यह नहीं जानता कि एक पृष्ठ के बाद दूसरे पृष्ठ में क्या रहेगा, किन्तु ऐसे लेखक कम होते हैं और उनके लिए नियम नहीं बनाए जाते। वे अपवाद स्वरूप हैं। उस रामभरोसे-ढग पर चलने वालों के लिए, निबन्ध में एकता और सौष्ठव (Symmetry) लाने की सभावना बहुत कम रहती है। यह मार्ग मशीनी तथा गढन्तू लेखकों के लिए भले ही अनुकूल हो, धन-लोलुप भले ही इस प्रकार से पुस्तकें लिखें, परन्तु जो सच्चे लेखक बनना चाहते हैं उनके लिए यह उचित मार्ग नहीं है। जो लेखक अपने जीवनोद्देश्य की पूर्ति के हेतु लेखनी उठाता है, उसे निबन्ध-रचना के लिए बड़ी तैय्यारी करनी पड़ती है। वह चार सतरें लिखेगा, परन्तु जो कुछ लिख देगा, वह अपने ढंग में निराला होगा।

व्याख्यात्मक और तार्किक लेखों के लिए पूर्व ही से सामग्री जुटाना अत्यावश्यक है। यदि पहले से ही विचार पूर्वक लेख के लिए नोट नहीं लिए जाते, युक्तियों का सग्रह नहीं होता तो लेख लिखते समय उसमें स्वाभाविकता लाना दुस्तर हो जायगा। लेख का विकास उसके प्रथम ढांचे के अनुसार होगा। लेख की इसी प्रथमावस्था—उसकी गर्भावस्था—पर हमें विचार करना है।

इसका ढंग यही है कि पहले विषय सम्बन्धी सभी बातों को टीप लीजिए, बाद में एकता और यौक्तिक-क्रम के सिद्धान्तों के अनुसार उन सब को तरतीब में लाइए। जिनका निकटवर्ती सम्बन्ध है उनको निकट लिखिए; दूसरों को दूर रखिए। इस प्रकार उनके समुदाय (Groups) बनेंगे। फिर उन समुदायों को परस्पर मिलाने वाला अर्थात् उन पर राज्य करने वाला एक खास सिद्धान्त तलाश कीजिए। जब सिद्धान्त निश्चित हो जाय, समुदाय बन जायें और उनकी तरतीब जम जाय तो प्रत्येक समुदाय को जुदा जुदा निबन्धों की भांति लेखबद्ध करना सहज हो जायगा। इस ढांचे से लेखक स्वेच्छानुकूल निबन्ध लिख कर अपनी उद्देश्य-पूर्ति कर सकता है।

व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों का ढांचा तीन मुख्य विभागों में बट सकता है। उनको भूमिका (Introduction) विकास (Development) और परिणाम (Conclusion) कहते हैं। विषय सम्बन्धी मुख्य मुख्य बातें भूमिका में निर्दिष्ट की जाती हैं, विकास में विषय का उत्थान, उसका विस्तार, रहता है; परिणाम में निबन्ध का सार, उसका निचोड़, पाठकों के सामने धर कर, उन पर प्रभाव डालने का, यत्न किया जाता है।

ढांचे के उदाहरण

पढ़ने के लाभ

भूमिका

शिक्षित पुरुष की पहचान—

सत असत विवेकिनी बुद्धि और आत्मज्ञान-शक्ति।

इस शक्ति के साधन—

निरीक्षण।

मनन।

स्वाध्याय—पुस्तकावलोकन।

विषय-निरूपण

पढ़ने की महत्ता—

मानसिक-शक्ति की शुद्धि का साधन।

दूसरों के अनुभव-जन्य ज्ञान की प्राप्ति।

घर बैठे विद्वानों का सत्सङ्ग।

निरीक्षण और अनुभव का शिक्षक।

सामग्री सग्रह कराने वाला।

परिहार-योग्य दोष—

दुचित्तापन—पढ रहे है ध्यान कहीं है।

अन्धविश्वास—बिना समझे निगल लेना।

पक्षपात—पहले से ही विरुद्ध भाव रख कर पढ़ना।

पढ़ने के अन्य उपयोग—

सार्वलौकिक ज्ञान वृद्धि।
चैतन्यता।
चरित्र-संगठन।
व्यवहारिक ज्ञान।

परिणाम

विद्वानों का पुस्तकों द्वारा सत्सङ्ग, शुद्ध अन्तःकरण और दृढ़ भक्ति से उनके वचनों को धारण करने का उपदेश।

—:०:—

विद्यार्थियों के कर्तव्य

भूमिका

१ विद्यार्थी अवस्था जीवन की सब से श्रेष्ठ अवस्था है।

(क) इस समय संस्कारों का दृढ प्रभाव होता है।
(ख) ये सस्कार भावी जीवन की नींव बांधते हैं।

२. विद्यार्थियों के बनने अथवा बिगड़ने पर जातिओं का बनना बिगडना निर्भर है।

३. विद्यार्थियों को प्रारम्भ से ही उनके कर्तव्य-ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए।

निबन्ध का विकास

१. प्रथम कर्तव्य—आज्ञा पालन

(क) माता पिता की आज्ञा।
(ख) गुरू का उपदेश।
(ग) योग्य, विद्वान बड़ों का कथन।

२. दूसरा कर्तव्य—समय का उपयोग

(क) दिनचर्य्या बनाना।
(ख) गप्पबाजी छोडना।
(ग) समय नष्ट करने वाले खेलों का परित्याग।

३ तीसरा कर्तव्य—व्यवस्था-बद्ध जीवन, इसके लाभ

(क) उद्दण्डता नष्ट होती है।
(ख) आदतें सुधरती है।
(ग) आज्ञा पालन का अभ्यास बढता है।
(घ) सघ के गुणों का ज्ञान होता है।
(ङ) मिलकर कार्य्य करने की शक्ति आती है।

४ चौथा कर्तव्य—स्वत्वाभिमान

(क) निर्भय रहें।
(ख) झूठ न बोलें।
(ग) निन्दा चुगली छोड़ दें।
(घ) चोरी न करें।
(ङ) कमीनी बातों से घृणा।

५ पांचवां कर्तव्य—वीर्य्य-रक्षा

(क) नित्य प्रति व्यायाम।
(ख) आपस में अश्लील बातों से घृणा।
(ग) गन्दे उपन्यासों से परहेज़।
(घ) सादा जीवन।
(ङ) बुरी संगत से बचना।

६ छठा कर्तव्य—स्वावलम्बन

(क) अपना पाठ आप तय्यार करना।

(ख) दूसरों की नकल से घृणा।

(ग) मेहनत मजदूरी की आदत डालना।

७ इन कर्तव्यों पर आरूढ़ रखने वाले साधन—

(क) ईश्वर पर विश्वास।

(ख) नित्य प्रति व्यायाम।

(ग) महापुरुषों की जीवनियों का पाठ।

(घ) सेवा धर्म का अमली सेवन।

(ङ) अपने देश का हित-चिन्तन।

परिणाम

१. विद्यार्थी जीवन जीवन-सग्राम की तय्यारी का समय है।

२ प्रत्येक विद्यार्थी को बड़े परिश्रम से अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ होना उचित है।

—:०:—

जातीय त्योहारों की उपयोगिता

भूमिका

१. जातीय त्योहारों का उत्पत्ति कारण—

(क) जाति की कोई महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटना।

(ख) जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले महापुरुषों के जन्म दिन।

(ग) ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी दिवस।

विचार

१. जातीय त्योहार राष्ट्र-निर्म्माण के सहायक हैं। क्योंकि-

(क) इनके द्वारा इतिहास की शिक्षा दी जाती है— जैसे रामलीला।

(ख) देश से बाहर प्रवास करने वाले लोगों में जातीय जीवन बना रहता है।

(ग) महापुरुषों के जन्मदिन मनाने से उनके निर्दिष्ट पथ का ध्यान रहता है।

(घ) सर्वत्र, सब स्थानों में नियत तिथियों पर, त्योहार मनाने से लोगों में एकता के भावों का सञ्चार होता है।

२. ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी त्योहारों के लाभ—

(क) ये त्योहार हमें प्रकृति के सौन्दर्य्य का पाठ पढ़ाते हैं।

(ख) मूढ से मूढ़ पुरुष को भी इनके द्वारा, अपने जीवन को ऋतु के अनुसार बनाने की, शिक्षा मिलती है।

३ हमारे प्रसिद्ध त्योहारों की नामावली और उनका सक्षिप्त ब्योरा—

(क) होली। (घ) विजयादशमी।
(ख) कृष्णाष्टमी। (ङ) दीप-माला।
(ग) रामलीला। (च) रक्षा बन्धन।

परिणाम

१. जातीय त्योहारों को मनाना हमारा कर्तव्य है।

२. इनको वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार बनाना उचित है।

३. हमें अपने बच्चों को बचपन से ही जातीय त्योहारों की महत्ता सिखलानी चाहिए।*

—:०:—

ढांचा बनाइए

निम्नलिखित विषयों के ढांचे बनाइए—

१. भारत में एक भाषा की आवश्यकता क्यों है?
२. प्रारम्भिक शिक्षा से लाभ।
३. राष्ट्र-निर्माण में साहित्य का स्थान।
४. श्रीतुलसीदास जी की साहित्य-सेवा।
५. माननीय गोखले का विद्यार्थी-जीवन।
६. भारत की निर्धनता दूर करने के उपाय।
७. गो-रक्षा के लाभ।
८. पुस्तकालयों की उपयोगिता।
९. राजा राममोहन राय का सुधार कार्य्य।
१०. म्युनिसिपल कमिश्नर के कर्तव्य।
११. अवध प्रान्त में कृषि जीवन।
१२. भारतीय धनिकों की फ़ज़ूल खर्ची।
१३. प्रेम-महाविद्यालय में विद्यार्थी-जीवन।

* आवश्यकतानुसार इन ढांचों को बढ़ा घटा सकते हैं। मैंने केवल उदाहरणार्थ इन्हें लिखा है—लेखक

निबन्ध-रचना

१-शीर्षक—निबन्ध-रचना से पहिले उसका शीर्षक निश्चित कर लेना परमावश्यक है। निबन्ध की एकता, उसके प्रत्येक अङ्ग का शीर्षक के साथ स्पष्ट सम्बन्ध होने पर, निर्भर है। शीर्षक के निश्चित हो जाने पर लेखक को, विषय से इधर उधर, भटकने की सम्भावना कम रहती है; और असली विषय की सीमा उसके मन में अच्छी प्रकार निर्धारित हो जाने के कारण उसे लेख लिखना सहज हो जाता है। इसके अतिरिक्त, शीर्षक के अनुसार विषय का लेखबद्ध करना, लेख के पूर्ण होने पर शीर्षक निश्चित करने की अपेक्षा, सुगमतर है। यदि निबन्ध पहिले लिख लिया जाय तो बाद में उसके अनुकूल शीर्षक मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में निबन्ध का शीर्षक या तो विषय की सीमा को उल्लङ्घन कर जाता है, अथवा उसे संकुचित बना देता है। अगर शीर्षक पहिले निश्चित कर लिया जाय तो लेखक लिखते समय निबन्ध की तदनुकूल काट छाँट कर सकता है, और उसे अपने विषय की निश्चित सीमा के अनुसार लेख-पूर्ति करने में सुगमता मिलती है। उदाहरणार्थ जब हम "पालतू पशुओं के स्वभाव" शीर्षक लेख पढ़ें और उसमें केवल लेखक की घरेलू गैया का ही वर्णन पाए तो उस लेख को पढ़ने वाला यह भांप जायगा कि लेखक ने निबन्ध लिखने के बाद अपना शीर्षक निश्चित किया है, क्योंकि कोई भी समझदार व्यक्ति उपर्युक्त शीर्षक रख कर उसमें केवल अपनी घरेलू गैया का ही वर्णन नहीं

करेगा। शीर्षक निश्चित किए बिना लेख लिखना ऐसा ही है जैसे सिर का आकार जाने बिना टोपी ख़रीदने जाना । ऐसी दशा में या तो टोपी बड़ी ही होगी या छोटी ही—कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य ही रह जायगी। इसके विपरीत यदि पहले से ही सिर का आकार निश्चित करके टोपी ख़रीदी जाय तो वह अपनी इच्छानुकूल मिल सकती है । यही बात शीर्षक के सम्बन्ध में है।

अब हम शीर्षक चुनने के नियम बतलाते हैं—

(क) शीर्षक स्पष्ट होना चाहिए । अनिश्चित, सन्दिग्ध, अस्पष्ट और वक्र शीर्षक त्याज्य हैं। विषय की विचित्रता वश यदि शीर्षक के नाम में विलक्षणता आ जाए तो वह क्षन्तव्य है, परन्तु उस विलक्षणता में असभ्यता का आभास न होना चाहिए। यदि लेखक, केवल पुस्तक विक्रयार्थ अथवा कौतूहल वश, शीर्षक में विलक्षणता भरता है तो उसका वह कर्म अति निन्दनीय समझा जायगा।

(ख) शीर्षक छोटा तो हो, परन्तु अपने विषय का स्पष्टता से द्योतक होना चाहिए। शीर्षक की सूक्ष्मता विषय का विस्तार कर देती है, इसलिए जहां तक हो सके शीर्षक को विषय की सीमानुकूल जामा पहिराना उचित है। शीर्षक में यथासम्भव क्रियाओं को स्थान देना ठीक नहीं।

(ग) शीर्षक निबन्ध की ध्वनि तथा उसके गुण का सूचक होना चाहिए। उदाहरणार्थ प्रश्नात्मक शीर्षक तार्किक निबन्ध का द्योतक होता है। "गगा-प्रवाह में अंधेरी रात"—शीर्षक, विषय की भयङ्करता जनाता है; "तिरिया-चरित्र" में स्त्रियों के चरित्र-दोष की ध्वनि आती है। इसी प्रकार लेखक को अपना शीर्षक बड़ी सावधानी से चुनना चाहिए।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि शीर्षक ऐसा होना चाहिए कि देखने वाला फौरन निबन्ध की नाड़ी पहचान जाय। बहुत सी पुस्तकें अस्पष्ट शीर्षकों के कारण ही नहीं पढ़ी जातीं। बहुतों के नाम पाठकों को भ्रम में डाल देते हैं। इन सब दोषों से बचने के लिए ऊपर के नियम लिखे गए हैं।

—.o.—

अभ्यास (Exercise)

१ निम्नलिखित शीर्षकों की परीक्षा कीजिए—

१ काल।
२. मनुष्य और संसार।
३. प्रारम्भिक-शिक्षा।
४ लार्ड मेकाले।
५ किसान और सरकार।
६. आंख की किरकिरी।
७. मनुष्य का कर्तव्य।
८ कर्तव्य-कर्म।
९ पावस-परमा।
१० स्वर्ग लोक।
११. हमारी यात्रा।
१२. जीवन विजय।
१३. राष्ट्र-भाषा।
१४ पतन और उत्थान।
१५. जापान की उन्नति।
१६. आत्म-विचार।
१७ सूरदास।

२. निम्नलिखित शीर्षकों को संक्षिप्त रूप में लाइए—

(१) स्कूल में पढने वाले विद्यार्थियों के लिए लाभकारी बातें।

(२) भारतीय किसानों के सब दुःख दूर करने का एक मात्र वैज्ञानिक तरीका।

(३) मांस-भक्षण वेदानुकूल है या नहीं ? इसकी यथार्थ दार्शनिक मीमांसा।

(४) धर्मात्मा मनुष्य ही मोक्ष को पाता है।

(५) मुसलमानी धर्म के दोष और हिन्दू धर्म की महत्ता पर विचार।

(६) रुपया पैसा पैदा करने के उपाय।

(७) व्यायाम करने के वे साधन जिनका प्राणायाम के साथ सम्बन्ध है।

(८) जापान वाले किस प्रकार खाना बनाते हैं, उसका यथाविधि वर्णन।

(९) हिन्दी-भाषा सीखने की सब से पहली पुस्तक।

(१०) ग्रामीण लोगों की दशा सुधारने वाली सभा समितियां।

*   *   *   *   *

२—भूमिका—(क) भूमिका में निबन्ध सम्बन्धी सिद्धान्त की स्पष्ट और उदार विज्ञापना होनी चाहिए। लेखक को यहां विषय सम्बन्धी आवश्यक सीमा निर्धारित करने और अपनी स्थिति जतलाने का बहुत अच्छा अवसर मिलता है। जहां तक हो सके पाठकों को लेखक के उद्देश्य का परिचय शीघ्र होना चाहिए। लेखक और पाठक में परस्पर सहानुभूति स्थापित होना दोनो के लिए लाभकारी है।

(ख) भूमिका में लेखन-शैली का ढंग बतला देना भी उचित होगा। यह बात लेखक की सगृहीत सामग्री और उसके उद्देश्य पर निर्भर है। लेखक उस निबन्ध को क्यों लिखने लगा है? उसका पाठकों पर क्या अधिकार है? उसकी योग्यता पर पाठक क्यों विश्वास करें? इत्यादि प्रश्न स्वभावतः ही पाठकों के हृदय में उठते हैं। इस हेतु लेखक को अपनी विद्या, अनुभव तथा उत्कृष्ट विचारों का नमूना भूमिका में अवश्य दिखलाना होगा, जिससे कि पाठकगण दत्तचित्त होकर लेखक की बात सुनें, और उसके एक एक शब्द पर विचार करते हुए उसके अनुभव से फ़ायदा उठावें। यदि पाठक आरम्भ से ही लेखक के अभिप्राय को समझ जाते हैं और उनका ध्यान लेखक की विद्वत्ता, योग्यता और अनुभव की ओर खिच जाता है तो उनके लिए विषय का समझना सुलभ हो जात।है अपने पाठकों को पहले से ही अंधेरे में रख—उनकी उपेक्षा कर—कोई भी लेखक अपने उद्देश्य का पालन नहीं कर सकता।

(ग) निबन्ध की भूमिका लेख के अनुरूप होनी चाहिए; अर्थात् जितना बडा निबन्ध हो उसी की सादृश्य-समता (Proportion) के अनुसार भूमिका भी हो। बड़े निबन्ध की छोटी भूमिका होना अच्छा है, किन्तु छोटे निबन्ध की बडी भूमिका होना ठीक नहीं। लेखन-कला में इसका कोई खास नियम तो है नहीं, क्योंकि बड़े बड़े प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों में कहीं कहीं भूमिका पुस्तक के परिमाण से बढ़ गई है, तोभी यथासम्भव नवीन लेखकों को लेख के अनुरुप ही भूमिका की सीमा रखनी चाहिए।

(घ) लेख को आरम्भ करने में सब से प्रथम उसके उद्देश्य का ध्यान रखना उचित है। यदि लेखक स्वयं अपने

उद्देश्य में अनिश्चित है तो उसके पाठक कभी भी उसके आशय को नहीं समझ सकेंगे, इसलिए लेखक को अपना लक्ष्य निश्चित कर फिर विषय में प्रवेश करना ठीक होगा। पहले हम इस सम्बन्ध की मुख्य मुख्य बातों पर विचार करते हैं—

(१) सब से बड़ी कठिनाई लेख के आरम्भ करने में है। किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाय कि पाठक का ध्यान विषय की ओर खिंचे। यहां असत् से सत् का भाव दिखलाना है। आरम्भ इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें विचारों का शृङ्खला-बद्ध विकास हो। विशिष्ट सञ्ज्ञा का परिचय कराये बिना सर्वनाम से विषय का आरम्भ करना उचित नहीं। किसी भी दशा में विषय का अस्पष्ट होना पाठक की रुचि को कम कर देता है। अतएव लेखक को विषय का प्रारम्भ किसी भ्रमोत्पादक शब्द अथवा वाक्य से नहीं करना चाहिए।

(२) बहुत से लेखक निबन्ध के शीर्षक का नाजायज़ फायदा उठाते हैं। वे शीर्षक को प्रथम वाक्य का रूप देकर विषय का विस्तार करने की चेष्टा करते हैं, यह शैली भी भ्रमोत्पादक है। प्रारम्भिक वाक्यों का शीर्षक से स्वतन्त्र, किन्तु सार्थक, अस्तित्व होना चाहिए। शीर्षक को निबन्ध का अंग बनाने से उसका प्रभाव कम हो जाता है। तात्पर्य यह है कि भूमिका का शीर्षक से पृथक, परन्तु सुबोध, होना आवश्यक है।

(३) विषय से दूर हटी हुई बड़ी लम्बी चौड़ी भूमिका बांधना लेखन-शैली का भारी दोष है। इससे पाठक व्यर्थ ही भूल में फंस जाता है। उसके मन में विषय-सम्बन्धी स्पष्ट संस्कार न जमने से वह लेखक के अभिप्राय से दूर हट जाता है, और बाद में जब उसे अपनी भूल मालूम होती है तो उसका लेखक पर विश्वास नहीं रहता।

(ङ) भूमिका लिखने में सफलता प्राप्त करने के हेतु विद्वान् लेखक प्रायः निम्नलिखित युक्तियां काम में लाते हैं—

(१) किसी कथा द्वारा, जो विषय के स्पष्ट करने में सहायता दे, लेख को आरम्भ करना अच्छा है। बडे बड़े विद्वान् लेखक किसी कहावत अथवा आख्यायिका द्वारा भूमिका बांध अपने पाठकों को वश में कर लेते हैं। कई प्रश्नात्मक वाक्यों द्वारा विषय को आरम्भ कर, अपने पाठक में कौतूहल उत्पन्न कर, फिर धीरे धीरे निबन्ध को रोचक बना अपने विषय में प्रवेश करते हैं।

(२) विषय में सीधा प्रवेश करने की शैली सर्वोत्तम है। प्राय. आधुनिक लेखक इसी शैली का अनुकरण करते हैं। इससे लेखक को विषय-पूर्ति करने में बड़ी सुगमता होती है, क्योंकि पाठक लेखक के मन की बात समझ उसका साथ देने के लिए तत्काल तय्यार हो जाता है। कथात्मक लेखों में वर्णन की अपेक्षा घटना के कार्य्य-क्रम से आरम्भ करना विषय को अधिक मनोरंजक बनाना है। जब पाठक की रुचि जाग उठे तो फिर धीरे धीरे वर्णन का सिलसिला छेडना उपयुक्त होगा। पाठक को जबतक लेख में मजा आने नहीं लगता तबतक वह अपना समय विषय सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातों में खर्च करने के लिए उद्यत नहीं होता। इसलिए कुशल लेखक भिन्न भिन्न प्रयोगों से अपने उपन्यासों अथवा कहानियों में आरम्भ से ही मनोरंजकता भरते हैं। उदाहरणार्थ—

"बॅंग ! बॅंग !

"सन्ध्या का समय था। कलकत्ता के ईडन स्क्वेअर में सैकड़ों मनुष्य हवाखोरी कर रहे थे। विद्यार्थियों के झुण्ड के झुण्ड

इधर उधर हरी घास में बैठे हुए ठण्ढी पवन का आनन्द ले रहे थे। इतने में 'बेंग ! बेंग !' की आवाज ने सब को चौकन्ना कर दिया। लोग घबरा कर इधर उधर देखने लगे। थोड़ी देर सन्नाटा रहा। इसके बाद 'बापरे ! मुझे गोली लगी' की आवाज़ आई। लोग उधर दौड़े तो एक विचित्र दृश्य देखने में आया।"

इस प्रकार का आरम्भ पाठक को अपनी ओर खींच लेता है। अच्छे अच्छे कथा-लिक्खाड़ तथा उपन्यासकार ऐसे ही भिन्न भिन्न प्रयोगों को काम में लाकर अपने लेख की भूमिका को मनोरञ्जक बनाते हैं। नाटक के तौर पर बातचीत से भी कथा का प्रारम्भ किया जाता है, पर उस वार्तालाप में विशेष चित्ताकर्षक मसाला रहना चाहिए। कथा की भूमिका का एक ढंग यह भी है। जैसे—

"वह धीरे धीरे दबे पाओं आ रहा था। दूर से किसी को लालटेन लिए हुए आते देख वह फौरन एक ईंटों के ढेर के पीछे बैठ गया।"

इतनी भूमिका ही पाठक का चित्त पकड़ लेती है और दो वाक्यों में बहुत सी बातें कह दी जाती हैं। फ्रांसीसी लेखकों में एलेक्ज़ेण्डर डूमा (Alexander Dumas) के उपन्यास देखने योग्य है। उसकी वर्णन-शैली बड़ी ही रोचक है। हमारे हिन्दी पाठकों में जो अंग्रेज़ी जानते हैं उन्हें उस जगत-प्रसिद्ध लेखक के उपन्यासों का आनन्द अवश्य लेना चाहिए।

कथात्मक, वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों की भूमिका तथा उसके उत्थान आदि के विषय में हम विशेष रूप से आगे चल कर कहेंगे।

३–विषय का विकास—विषय के विकास के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहले कह दिया जा चुका है। अब यहां संक्षेप रूप से दो चार मोटी मोटी बातें लिख देते हैं—

(क) विषय के विकास में एकता (unity) मुख्य चीज है, उसका बराबर ध्यान रखना चाहिए। विषय से बाहर भागने वाला लेखक अपने आपको हास्यास्पद बनाता है।

(ख) एकता के साथ साथ लेख में ध्वनि का सादृश्य होना भी जरूरी है। यदि लेख तार्किक है तो उसमें सिलसिले-वार तर्क द्वारा सब बातें सिद्ध कीजिए, यदि व्याख्यात्मक है तो उसका ताल वही रहे, व्याख्या का क्रम टूटने न पाए। वैज्ञानिक लेखों में भावपूर्ण कवित्व-शैली (sentiments) से काम नहीं चलता वहां तुली हुई बातें, शुद्ध तर्कना, निर्दोष निरीक्षण-शक्ति चाहिए। जैसा विषय हो और जिस प्रकार के पाठकों के लिए निबन्ध लिखा जाय, उसी के अनुसार लेख में बराबर ध्वनि रहनी उचित है।

(ग) यौक्तिक-क्रम (Logical Sequence) के विषय में पहले लिख चुके हैं।

(घ) विषय के विकास में उसके भागों की लम्बाई का ध्यान भी रखना होगा। कोई हिस्सा बढ़ने घटने न पावे, विषय का सर्वाङ्ग पूर्ण विकास हो, तभी उसमें सुन्दरता आ सकती है।

४–परिणाम—लेख को पूर्ण करने का स्वाभाविक ढंग तो यही है कि जब आप अपना कथन पूरा कर चुकें तो लेख को समाप्त कर दीजिए। परन्तु वे लोग जो, किसी निश्चित उद्देश्य से कलम उठाते हैं, अन्त में अपने अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने और पाठकों पर अपना प्रभाव डालने

के लिए थोड़े, किन्तु प्रभावशाली, शब्दों में अपने लेख का निचोड़ लिखते हैं। कुछ लेखक अन्त के भाग में पहुंच कर विषय को समेटते हैं और धीरे धीरे विषय का संक्षेप (Summary) करते हुए बड़ी खूबसूरती से उसको समाप्त करते हैं।

परन्तु विषयों की विभिन्नता के कारण उसकी समाप्ति के ढग भी अलग अलग हैं। यदि विषय ऐतिहासिक हो तो लेखक को भविष्यद्वक्ता की तरह अन्त में भावी विचार प्रगट करने होंगे। छोटी छोटी कथाओं के अन्त करने का पुराना ढग यह है कि फल-स्वरूप कोई उपदेश-तत्व नीचे धर देते हैं, जैसे पञ्चतन्त्रादि पुराने सस्कृत के ग्रन्थों में पाया जाता है। बहुत से लेखक विषय को पूर्ण करते समय, भूमिका को छूते हुए, अन्त को निचोड़-स्वरूप शीर्षक को लिख कर विषय की समाप्ति कर देते हैं। यह भी अच्छा ढंग है। कुछ लेखक अपने विषय का अन्त, बिना अपने पाठकों को सावधान किए ही, कर देते हैं। पाठक बेचारा सन्न सा रह जाता है कि यह क्या हो गया। उसकी इच्छा पूरी किए बिना ही कुशल लेखक उसको दमझांसा दे जाता है। यह प्रयोग नौसिखिए लेखकों के लिए उपयुक्त नहीं। इसमें बड़ी चतुराई की ज़रूरत है।

उपर्युक्त सब बातों को स्पष्ट करने के लिए हम आगे चल कर निबन्ध के एक एक भेद को पृथक पृथक लेकर, उसकी आवश्यक बातों की छानबीन करेंगे। यदि हो सका तो उसके नमूने दिखला अपने प्रेमी पाठकों के सशय दूर करने का यत्न करेंगे। पहले हम निबन्ध-विच्छेद तथा चिन्ह-विचार पर कुछ लिखते हैं, ताकि साधारण तौर पर निबन्ध-रचना विषय की पूर्ति हो जाय।

निबन्ध-विच्छेद

सभी प्रकार के बड़े बड़े निबन्ध अपनी लम्बाई और जटिलता के अनुसार भिन्न भिन्न भागों और उपभागों मे विभक्त किए जाते हैं। उनको पुस्तक, काण्ड, समुल्लास, खण्ड, पाद, परिच्छेद, प्रकरण, पाराग्राफ और वाक्य इत्यादि नामों से पुकारते हैं। उनकी लम्बाई और परिमाण का कोई विशेष नियम नहीं है, निबन्ध के आन्तरिक प्रबन्ध के अनुसार उनका परिमाण घट बढ सकता है।

इन भागों उपभागो के व्यवस्थापक नियम भी वैसे ही हैं, जैसे कि सारे निबन्धो के, जिन बातो का उल्लेख निबन्ध के सम्बन्ध मे पीछे किया गया है वही कायदे इन पर भी लागू समझने चाहिये। केवल भेद यह है कि इनके व्यवस्थापक नियमों की दो जातियां है, एक इनकी अपनी अन्दर की बनावट को ठीक रखती है और दूसरी इनके बाहर का सम्बन्ध स्थिर करती है।

उस बाहरी सम्बन्ध की स्थिरता के लिए लेखक महाशय आवश्यकतानुसार शब्द, उक्ति, वाक्य अथवा पाराग्राफ का प्रयोग करते हैं। यदि विचारो का आपस का सम्बन्ध क्रमबद्ध और स्पष्ट हो तो इस प्रकार के ढगों की जरूरत ही नहीं रहती, और लेखन-कला सीखने का सब से श्रेष्ठ मार्ग तो विद्वान साहित्य-सेवियो की लेखन-शैली का विचार पूर्वक अध्ययन और मनन है, तो भी निबन्ध-विच्छेद के कुछ नियम हम अपने प्रेमी पाठको की सेवार्थ उपस्थित करते हैं। विशेष

कर पाराग्राफ, वाक्य और शब्दों के सम्बन्ध मे मोटी मोटी बाते लिख कर हम इस विषय की पूर्ति करेंगे।

१-पाराग्राफ—सब से पहले, पाराग्राफ क्या है? यह जानना जरूरी है। जब हम किसी विषय पर निबन्ध लिखने का विचार करते हैं तो हमारे मन ही में उस मजमून के कई टुकडे हो जाते हैं, और जब कुछ और गम्भीर विवेचना होती है तो उन टुकडों के भी छोटे छोटे टुकडे निकल आते है। अब जब आप उन मानसिक सकल्प विकल्पो को लिखने बैठते है, तो अपने पाठक को मन की बात समझाने के लिए—उन छोटे छोटे विचारों का बोध कराने के लिए—कोई तरीका काम मे लाते ह। लेखन-कला की परिभाषा में, जब हम मुख्य विषय के किसी प्रकरण को आरम्भ करते समय पहली सतर का कुछ हाशिया छोड कर लिखते हैं तो, उसको पाराग्राफ करना कहते है। इस तरीके से पाठक को मुख्य विषय समझने मे बडी सहायता मिलती है और वह बराबर एक प्रकरण के बाद दूसरा प्रकरण समझता चला जाता है।

इसमे दो मुख्य बातो का ध्यान रखना पडता है। एक तो यह कि क्या इस ढग से उस विषय के स्पष्टीकरण में विशेष सहायता मिलती है? दूसरे, क्या इस पाराग्राफ का सारे निबन्ध से शुद्ध सम्बन्ध है?

२-पाराग्राफ की लम्बाई—पाराग्राफ बनाने का असली सिद्धान्त यह है कि यह मुख्य विषय के किसी एक विशेष भाग की व्याख्या करता है। जब उसकी व्याख्या हो चुकी तो पाराग्राफ पूर्ण हो जाता है, और नए प्रकरण से नया पाराग्राफ चलता है। जब लेखक एक पाराग्राफ खतम करके दूसरा आरम्भ करता है तो पाठक फौरन सावधान होकर नई बात

सुनने के लिए तय्यार हो जाता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि लेखक दो दो तीन तीन सतरों के बाद पाराग्राफों का तांता बांध देगा तो पाठक के लिए पाराग्राफ मामूली बात हो जायगी और उसका असली उद्देश्य नष्ट हो जायगा। इसलिए साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि पाराग्राफ उतना ही लम्बा होना चाहिए जिसमें एक कल्पना का स्वच्छन्द उद्भव हो सके, हां इतना लम्बा न हो कि पाठक बेचारा उकता जाय। लगभग एक सौ शब्दो से लेकर चार सौ शब्दो तक की लम्बाई के पाराग्राफ दक्ष लेखकों की पुस्तकों मे देखे जाते है, अधिक सख्या सौ शब्दो तक के पाराग्राफ की ही निकलेगी। थोड़ा कहना और मतलब का कहना, यही प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है।

यह तो निश्चय हो गया कि प्रत्येक पाराग्राफ में खास प्रकरण हो और उस पाराग्राफ का सगठन निबन्ध के अनुसार रहे, किन्तु यह भी देखना है कि प्रकरणों के अन्य जो भेद होंगे उनके पाराग्राफों की लम्बाई क्या होनी चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर निबन्ध की निश्चित लम्बाई पर निर्भर है।

उदाहरणार्थ यदि निबन्ध का शीर्षक हो—"मेरे तीन मित्र" और उसकी लम्बाई आठ सौ शब्दों की ही रखनी पड़े तो मामूली तौर पर तीन मित्रों के लिए तीन पाराग्राफ ठीक जचेंगे। परन्तु आप की इच्छा तीन से अधिक पाराग्राफ करने की है तो उस दशा में—

१. मेरे पहले मित्र का जीवन-चरित्र।
२. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।
३ मेरे दूसरे मित्र का जीवन-चरित्र।
४. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।

५. मेरे तीसरे मित्र का जीवन-चरित्र।

६. उसका मेरे ऊपर प्रभाव।

इस प्रकार आप छः पाराग्राफ बना कर अपने निबन्ध को प्रभावशाली बना सकते है। केवल भेद यही होगा कि पहले तीन बड़े पाराग्राफों की अपेक्षा अब आप छः छोटे पाराग्राफ कर सकेंगे।

३—पाराग्राफ का भावपूर्ण वाक्य—पाठक की आसानी तथा अपनी नीति-स्थिर रखने के लिए लेखक को अपना निश्चित अभिप्राय पाराग्राफ के आरम्भ अथवा अन्त में लिखना चाहिए। आधुनिक शैली के अनुसार पाराग्राफ के आरम्भ में एक भाव-पूर्ण वाक्य लिख दिया जाता है और बाद के वाक्य उस भाव का विकास और स्पष्टीकरण करते हैं।

कथात्मक लेखों में ऐसा करने की कम आवश्यकता है। वहां घटनाओं का क्रम बना रहना अत्यावश्यक है। पाठक उस क्रम को बडी आसानी से पकड़ लेता है। वहां भाव-पूर्ण वाक्यों में माथापच्ची करने से उसकी कथा का मजा जाता रहता है।

—:०:—

अभ्यास (Exercise)

१. आठ सौ शब्दों के निम्नलिखत निबन्धों के लिए पाराग्राफ-प्रकरण बतलाइए—

(क) गुरु गोविन्द सिंह जी का बलिदान।

(ख) मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की पितृभक्ति।

(ग) द्रोपदी का स्वयम्बर।

(घ) क्रिकेट का खेल।

(ङ) गन्दे उपन्यासों का विद्यार्थियों पर प्रभाव।
(च) कालेज में मेरा प्रथम दिन।
(छ) पत्र-सम्बाददाता के कर्तव्य।

२. निम्नलिखित पाराग्राफों के लिए भाव-पूर्ण वाक्य लिखिए—

(क) मेरी लम्बी सैर।
(ख) शिवाजी का औरङ्गजेब को चकमा।
(ग) मेरा नौकर।
(घ) कालेज बोर्डिङ्ग हौम्स में विद्यार्थी-जीवन।
(ङ) झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता।
(च) महात्मा हंसराज जी का स्वार्थ-त्याग।
(छ) आम का मजा।
(ज) बुद्धू कहार की धूर्तता।
(झ) यदि मैं करोड़पति बन जाऊं।
(ञ) मेरी पूज्या माता।
(ट) काशी–विश्वनाथ के दर्शन।

४–पाराग्राफ की सामग्री का प्रबन्ध—निबन्ध आरम्भ करने से पहले प्रत्येक पाराग्राफ की मुख्य बात का अच्छी प्रकार मनन कर लीजिए। प्रत्येक पाराग्राफ को एक छोटा निबन्ध समझ कर उसका वैसे ही संगठन कीजिए। जब निबन्ध अपने पाराग्राफों के निश्चित उद्देश्यों के साथ चित्र-वत् आपके सामने खड़ा हो जाय, और आप निबन्ध के शरीर का भली प्रकार संगठन कर लें तो फिर प्रत्येक पाराग्राफ की सामग्री का प्रबन्ध सहज हो जाता है। प्रत्येक पाराग्राफ में एकता, यौक्तिक-क्रम और ओज का वैसे ही ध्यान रखना पड़ेगा।

५-पाराग्राफ और निबन्ध का पारस्परिक सम्बन्ध—मोटे तौर से तो हम इस विषय को ऊपर बतला चुके हैं, परन्तु एक बात और है। जैसे कुशल शिल्पी जब मकान का नकशा बनाता है तो वह पत्थर, लकड़ी आदि सामान का आकार, लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, पहले निश्चित कर लेता है। सब चीजें गिनी हुई संख्याबद्ध आती हैं और उनको अपनी अपनी जगह धरते हैं। परन्तु केवल धर देने से काम नहीं चलता, उनको अपनी अपनी जगह बिठलाने के लिए सीमेन्ट, तार आदि वस्तुओं की जरूरत पड़ती है। यही दशा पाराग्राफों की है। उनको ऊपर नीचे एक दूसरे के साथ सीमेन्ट करने के लिए शब्दों, उक्तियों तथा वाक्यों का प्रयोग किया जाता है, ताकि एक पाराग्राफ स्वाभाविक रीति से दूसरे के साथ जुड़ जाए, बीच में कोई छिद्र, कोई छूट, न रहने पावे। उन शब्दों उक्तियों तथा वाक्यों का प्रयोग पाराग्राफ के आरम्भ में किया जाता है। उदाहरणार्थ "शिक्षा का आदर्श" में, विषय-योजना, का प्रकरण देखिए—

(१) किसी जाति में प्रचलित, शिक्षा-प्रणाली की पहचान, उसके इतिहास से होती है।

(२) भारतवर्ष के इतिहास में जिस समय हम महमूद गजनवी के सत्रह धावों का वर्णन पढ़ते हैं तो चकित हो जाते हैं।।

(३) भारतवर्ष और रूस के लोगों में इतना भेद क्यों?

(४) इतनी दूर क्यों जाते हो?

(५) भारतीय समाज में संघ-शक्ति का ऐसा प्रभाव क्यों है?

(६) चरम सीमा पर पहुंचे हुए इस व्यक्ति-वाद की शिक्षा ने भारत की सब नसें ढीली कर दी हैं।

(७) इस व्यक्ति-वाद का भयङ्कर प्रभाव भारत पर पड़ा।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रत्येक पाराग्राफ का पहला वाक्य ऐसा होना चाहिए कि वह पिछले पाराग्राफ का सम्बन्ध बराबर कायम रखे। पाराग्राफों में परस्पर सम्बन्ध जारी रखने के चार तरीके हैं—

(क) वाक्यों द्वारा पिछला सम्बन्ध जताया जाता है, जैसे-

"यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिए।"

(ख) सम्बन्ध स्थिर रखने वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं, जैसे—पहला, दूसरा, अन्त में, इसके अनन्तर, फिर, किन्तु, परन्तु, लेकिन, तौभी, इसके विपरीत, अस्तु, अन्यथा, इससे, क्योंकि, क्योंकर, तब, बहुधा, अतएव, कम से कम, इसलिए, अच्छा, इसके अनुसार, सारांश, परिणाम, इस कारण, विशेष कर, इस हेतु, इस प्रकार, इस दशा में, यदि, ऐसा, यद्यपि, तदपि, तथापि, यथा, उपर्युक्त, प्रायः, साधारणतया, सामान्यतया, थोड़े में, इत्यादि।

(ग) शब्दों तथा उक्तिओं को दोहराने से भी पहले का सम्बन्ध स्पष्ट किया जाता है, जैसे—

प्राणायाम के चार तरीके विद्यार्थियों के लिए

उनमें से सब से आसान तरीका दूसरे

तरीके में एक विशेष बात

* * * * *

पाराग्राफ के सम्बन्ध में जो बातें ऊपर बतलाई गई हैं वे अत्यन्त उपयोगी हैं, विद्यार्थियों को उनसे बड़ा लाभ पहुंचेगा। परन्तु यह हम बल-पूर्वक कह देते हैं कि नियम उपनियम कुछ काम नहीं देते, यदि स्पष्ट विचार करने की आदत न हो। सब से पहली आवश्यकता निर्दोष-चिन्ताशील बनने की है। विद्यार्थियों को शुद्ध मनन करने का अभ्यास डालना चाहिए।

—:०:—

वाक्य-रचना

वाक्य में तीन खास बातों का ध्यान रखना पड़ता है—स्पष्ट सम्बन्ध, निर्दोष संगठन, और शुद्ध व्याकरण। नौसिखिए लेखकों के लिए वाक्य-रचना टेढ़ी खीर मालूम होती है; जिनको अभ्यास है उनके लिए यह साधारण बात है। पटु-लेखक वाक्य को तोड मरोड़, भेद छेद, अंग भंग, बढा घटा, अदल बदल, छोटा बडा, जैसे उसकी मौज हो, कर सकता है। उसके लिए यह बच्चों का खेल है। लेखन-शैली तथा ओज के ख्याल से शुद्ध व्याकरण की अपेक्षा वाक्य-विन्यास-चातुरी अधिक आवश्यक वस्तु है। व्याकरण की अशुद्धियों को तो चैतन्य पाठक थोडे परिश्रम से ठीक कर लेता है, किन्तु वाक्यों की भद्दी रचना गडबडाध्याय कर देती है। वाक्य-रचना के साधारण नियम वे ही हैं जो पारग्राफ मे कह चुके है। यदि इस विषय में अधिक जानना हो तो अन्य हिन्दी व्याकरणों में देख लीजिए। पुस्तक बढ़ जाने के भय से हम इस पर अधिक नहीं लिख सकते।

—:o:—

शब्द-कोष

यदि लेखक का शब्द-भण्डार अत्यन्त परिमित है तो उसकी विचार-शक्ति भी वैसी ही समझिए। शब्द, भाव का निश्चित चिन्ह है, इसलिए शब्द-कोष, लेखन-कला का मुख्य सहायक है।

कोई भी लेखक अपनी लेखनी में बल, ओज, और प्रभाव नहीं भर सकता, यदि उसके शब्द-कोष में तीन प्रधान गुणों का अभाव है—प्रथम सत्यता (Exactness), दूसरे व्यंजकता (Suggestiveness), तीसरे औचित्य (Propriety), अब हम एक एक की व्याख्या करते है।

१—सत्यता—शब्द-कोष में सत्यता के अर्थ यह हैं कि लेखक के शब्द उसके अभिप्राय को ठीक ठीक प्रगट करें। प्रायः, उचित शब्द विशेष जाति का बोधक होने के कारण, संकीर्ण भाव रखता है। पशु सामान्य व्यापकता-बोधक शब्द है, घोड़ा विशेष जाति-बोधक होने से संकुचित अर्थों का द्योतक है। लिखने की सामग्री सामान्यार्थक है; काग़ज़, स्याही, कलम विशेष अर्थों को जनाते हैं। कुछ दूर पर सामान्यार्थक है, एक मील पर विशेष अर्थ का निरूपण करता है। दुराचारी सामान्य शब्द है, पर-स्त्रीगामी विशेषार्थ द्योतक है। साधु साधारण शब्द है; कनफटा, निर्मला, उदासी विशेष अर्थों को जनाते हैं। लेखक को विशेषार्थक शब्दों का अधिकता से उपयोग करना चाहिए। इसके दो लाभ हैं—एक तो लेखक स्वयं अपना भाव स्पष्ट समझने में वाध्य हो जाता है और उसकी सन्देहात्मक-विचार (Vague thinking) की हानिकारक आदत छूट जाती है; दूसरे अधिकांश लोग साकार भावों द्वारा चिन्तन करते हैं, निराकार द्वारा नहीं। विशेष शब्द साकार वस्तु का बोधक होने से तत्काल समझ में आ जाता है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के समाचार देते हुए एक समाचार-पत्र का सम्वाददाता लिखता है—

"स्टेशन पर लोगों ने सभापति महोदय का सप्रेम-स्वागत किया। इसके बाद स्टेशन से सवारी चली।"

"सप्रेम-स्वागत" सामान्य, अनिश्चित अर्थों का द्योतक है। इसके स्थान पर—

"स्टेशन पर लोगों ने सभापति महोदय का फूलों की माला तथा पुष्पों की वर्षा द्वारा सप्रेम-स्वागत किया।"

ऐसा वर्णन अधिक स्पष्ट और निश्चित है। एक विद्यार्थी अपने घर पत्र लिखता है—

"जब से मैं यहां आया हूं मेरा समय बड़े आनन्द से बीतता है। यद्यपि पठन-पाठन में बहुत सी कठिनाइयां हैं, किन्तु वे सब जल्द दूर हो जायेंगी। मैंने आपको पिछले दो महीने से इसलिए पत्र नहीं लिखा कि यहां एक ख़ास घटना हो गई थी।"

इस चिट्ठी में कोई बात स्पष्ट नहीं, सब गोलमाल है। इसके लेखक को प्रमत्त-विचार (careless thinking) की बीमारी है। उसको लिखना चाहिए था—

"जब से मैं स्कूल-बोर्डिंगहौस में आया हूं कबड्डी, फुट-बाल, क्रिकेट, कोई न कोई खेल बराबर होता ही रहता है, समय बड़े आनन्द से बीतता है। यद्यपि गणित का विषय मेरे लिए अभी बड़ा कठिन मालूम होता है और सस्कृत भी कुछ सरल नहीं, तोभी मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरी ये सब कठि-नाइयां धीरे धीरे दूर हो जायेंगी। मैंने आपको पिछले दो महीने से इसलिए पत्र नहीं लिखा कि हमारे बोर्डिंगहौस का कुछ भाग वर्षा में गिर जाने के कारण हम लोग नया मकान बदलने के संकट में थे। अब हम नये मकान में आ गये हैं।"

यह चिट्ठी स्पष्ट है। इसमें सब बातें ठीक ठीक मालूम होती हैं; पढने वाला लिखने वाले की यथार्थ कठिनाइयों को समझ जाता है। स्मरण रहे कि सत्य और यथार्थ लिखने के लिए अच्छा शब्द-संग्रह चाहिए। पांच चार सौ शब्द किसी विदेशी भाषा के जानकर उस देश में आसानी से सैर सपाटा तो हो सकता है, किन्तु किसी भाषा का अच्छा लेखक बनने के लिए कम से कम आठ नौ हज़ार शब्दों के जानने की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक शेकस्पियर ने कुल १५००० शब्दों द्वारा अपनी पुस्तकों में विविध मानुषी लीलाओं का चित्र खेंचा है। आप अपने शब्द-भण्डार की परीक्षा तो कीजिए?

प्रायः अधिकांश शिक्षित मनुष्यों के पास दो प्रकार का शब्द-संग्रह होता है—एक तो पुस्तक, कविता, लेख, बातचीत समझने के लिए, दूसरा अपने व्यवहार के लिए। बहुत से शब्द जब पुस्तकों में आते है तो हम उनके अर्थ समझ लेते हैं, परन्तु हम उन्हें प्रयोग में नहीं लाते, हमें वे व्यवहार के समय सूझते ही नहीं। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि हमने उन शब्दों को अपनाया नही है। यदि हम अपनी बोल-चाल, अपने लेख, अपनी कविता में नए नए शब्दों का प्रयोग किया करें तो निरन्तर व्यवहार से वे शब्द हमारे हो जांय, और धीरे धीरे हमारा शब्द-संग्रह बढ़ता जाय। इसलिए जब कभी आपको लेख लिखते समय अपना विचार प्रगट करने में कठिनाई हो तो फौरन डिक्शनरी की शरण लीजिए। जो शब्द आपका अपना है, उसके दो चार पर्य्यायवाची शब्दों की तलाश कर, जो ठीक आपका अभिप्राय प्रगट करे, उसको काम में लाइए। यही मार्ग शब्द-संग्रह बढ़ाने का है।

शब्द-कोष में "सत्यता" का विषय अब स्पष्ट हो गया होगा। अधिक शब्द-भण्डार होने से ठीक अपने अभिप्राय का सूचक शब्द आसानी से मिल सकता है। जब हमारे पास हमारे विचारों को प्रगट करने के लिए शब्द ही नही है तो फिर 'सत्यता' कहां से आ सकती है।

२—व्यंजकता—भाषा में 'व्यंजकता' से अभिप्राय उस शक्ति से है, जो मानसिक-कल्पना में उत्तेजना उत्पन्न करती है। सब से अधिक व्यंजकता-पूर्ण शब्द वे हैं, जो हों तो आम बोल-चाल के, किन्तु जिनका नए रूप में व्यवहार किया जाय, जैसे फूल खिलता है। खिलना आम मामूली बोलचाल का शब्द है। "फूल खिलता है", इसमें इसकी कोई व्यंजकता मालूम नहीं होती, परन्तु जब हम कहते हैं—"उस नवयुवक के चेहरे का

रंग खिल गया" तो इसमें मज़ा आने लगता है। हालां कि शब्द वही है, किन्तु उसका नए रूप में व्यवहार उसमें व्यंजकता भर देता है। और देखिए, "वह ग़रीब बेचारा आंसु बहाने लगा"। 'आंसु बहाना' मामूली क्रिया है; यहां इस वाक्य में इसमें कोई व्यंजकता नहीं, परन्तु—"हिमालय की चोटियां भी आंसु बहा रही हैं"—यहां उसी क्रिया में व्यंजकता आ गई। "मैंने घर में प्रवेश किया", यहां प्रवेश किया में कोई रोचकता, नवीनता नहीं है, परन्तु—"मैंने निद्रा देवी के भवन में प्रवेश किया"—यहां इसमें व्यंजकता आ जाती है। "पण्डित जी ने मुझे आशीर्वाद दिया", आशीर्वाद यहां साधारण शब्द है, इसमें कोई ख़ास बात नहीं, परन्तु—"वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद दे रही है।" यहां आशीर्वाद में व्यंजकता है; इसका मज़ा कुछ और है। "उसने मेरी वस्तु चुरा ली।" यहां चुरा ली में कुछ भी ख़ास भाव नहीं है, परन्तु "भगवान कृष्ण अपने भक्तों का दिल चुरा लेते हैं", यहां उसमें कुछ आनन्द ही दूसरा है।

व्यंजकता लाने के लिए यह ज़रूरी है कि विशेष भावबोधक (Specific) शब्दों का प्रयोग किया जाय; अमूर्त (abstract) शब्दों में यह गुण प्रायः कम पाया जाता है। "अपना घर बड़ी खूबसूरती से सजाया था" यह खाली शब्द हैं, इनसे मानसिक-भावों में कोई जागृति नहीं होती। परन्तु, "उनका घर रंग-बिरंगी जापानी कन्दीलों से सजाया हुआ था।" इससे फौरन एक चित्र सामने खड़ा हो जाता है।*

इसलिए नवीन लेखकों से हमारा नम्रता-पूर्वक निवेदन है कि यदि वे अपने विषय को रोचक और मनोरंजक बनाया

*आजकल हिन्दी गद्य तथा पद्य में जो पुस्तकें निकल रही हैं, पाठक महोदय कृपा कर उनमें व्यंजकता की तलाश किया करें—लेखक

चाहते हैं तो उन्हें विशेष (Specific) शब्दों के व्यवहार करने की आदत डालनी चाहिए ।*

३—औचित्य—भाषा में शब्दों का उचित व्यवहार भी आवश्यक है। यद्यपि 'सत्यता' और 'व्यंजकता' का गौरव भाषा में विशेषतर है, तोभी औचित्य का भी अपना कुछ उपयोग है। यह बाहर का परदा है, इससे पहला संस्कार होता है। सत्य, वीरता, क्षमा आदि बड़े अच्छे गुण हैं, परन्तु ये पराधीन जाति में कुछ ऊँचते नहीं। ऐसा क्यों है? इसका उत्तर यही है कि सभ्य संसार उसको ऐसा ही समझता है।

यही दशा शब्दों की है। समाज के शिक्षित लोग जिन शब्दों का जैसा व्यवहार करते हैं वही व्यवहार उपयुक्त समझा जाता है। अंग्रेज़ी भाषा में ऐसे शब्द का उपयोग, जिनको समाज उचित नहीं समझता, barbarism कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि जो शब्द जिस अर्थ में समाज के विद्वानों में बोला जाता हो, उसको बिगाड़ कर दूसरे अनुचित अर्थों में उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए, और जिन शब्दों को विद्वानों ने अभी स्वीकार नहीं किया, उनको ज़बरदस्ती व्यवहार में लाना असंगत है। शब्द-पाण्डित्य की परिभाषा में इसी को "औचित्य" कहते हैं।

परन्तु यह बन्धन है। प्रतिभाशाली लेखकों ने कभी बन्धन की परवाह नहीं की। इसलिए मैं यह 'औचित्य' का विषय दूसरे विद्वानों के लिए छोडता हूं। वे इस 'बन्धन' के विषय पर मुझसे कई दरजे अच्छा लिख सकेंगे।

---

*पुस्तक बढ़ने के भय से मैंने अलङ्कार आदि विषय का इस पुस्तक में समावेश नहीं किया, और न उसकी यहा इतनी बड़ी आवश्यकता ही थी—लेखक

लेख-चिन्ह-विचार

१—लेख-चिन्हों का उद्देश्य—जब कोई व्यक्ति बात-चीत करता है, अथवा व्याख्यान देता है, तो उसकी आवाज़ कभी ऊंची हो जाती है, कभी नीची, कभी उसका स्वर ज़ोर-दार हो जाता है, कभी धीमा। निबन्ध-रचना में हम उस उत्थान और पतन को चिन्हों द्वारा प्रगट करते हैं।

लेख-चिन्हों के दो मुख्य उपयोग हैं—एक तो इनके द्वारा विचारों का आपस का सम्बन्ध स्पष्ट होता है, दूसरे विचारों के प्रगट करने में स्वेच्छानुकूल बल भरा जा सकता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्यों पर विचार कीजिए—

मैं वहां जाऊंगा।

मैं ? वहां जाऊंगा !

आप मुझे पहचानते हैं, मैं आपके घर प्रायः आया जाया करता था।

आप मुझे पहचानते हैं ? मैं आपके घर प्रायः आया जाया करता था।

देवीदत्त जैसे कवि आजकल मारे मारे फिरते हैं।

देवीदत्त, जैसे कवि आजकल मारे मारे फिरते हैं . . . .।

उपरोक्त उदाहरणों में चिन्हों के बदल देने से जो अर्थ-भेद हो जाता है उसको तो आपने जान लिया, अब नीचे लिखे वाक्यों में जो परिवर्तन होता है उसे भी देखिए—

आप मेरा यह काम कर दीजिए।

आप मेरा, यह काम कर दीजिए।

आप, मेरा यह काम कर दीजिए।

आप मेरा यह, काम कर दीजिए।

लेख-चिन्हों का पक्का नियम यह है—

<u>उन चिन्हों को प्रयोग में लाइए जिनसे आपका अर्थ स्पष्ट होता हो</u>।

अभिप्राय केवल स्पष्ट अर्थ से है। लेखक के दिल में जो सच्चा भाव हो, पाठक उसे यथार्थ समझ जाय। पुराने पण्डितों की भूलभुलैय्यां शैली, आधुनिक निबन्ध-रचना के नियमों के अनुसार, अत्यन्त दोष-पूर्ण और हानिकारक है। ऐसी ही शैली के कारण आज हमारे धार्मिक शास्त्रार्थों में किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता। लिखने का मतलब यही है कि पढ़ने वाला अर्थ का अनर्थ न कर सके। इसी लिए विद्वानों ने लेख-चिन्हों का नया तरीक़ा निकाला है। उन्हीं चिन्हों के विषय में यहां लिखते हैं।

(क) यदि साधारण तौर से वाक्य पूरा हो जाय तो (।) खड़ी पाई लगाते हैं। इसे पूर्ण विराम भी कहते हैं, जैसे—

मैंने उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ लिया।

(ख) यदि वाक्य हर्ष, शोक, भय, विस्मय आदि भावों का सूचक हो तो (!) ऐसा चिन्ह लगाते हैं। इसको उद्गार-चिन्ह कहते हैं, जैसे—

मारो जयचन्द पापी को!

(ग) वाक्य यदि प्रश्नात्मक हो तो (?) ऐसा प्रश्न-चिन्ह लगाते हैं, जैसे—

वह कौन आदमी है ?

वाक्य के अन्तर्गत विचार-भेद, उत्थान-पतन, तथा अन्य जो मानुषी भावों का परिवर्तन होता है उनके जतलाने के लिए 'कामा' (पाद-विराम), अर्द्ध-विराम (Semicolon), आदेशक (Dash) आदि चिन्हों का प्रयोग किया जाता है । अब हम सविस्तर एक एक के नियम लिखते है ।

२–कामा (पाद-विराम)—लिखने में जहां व्याकरण-पद-योजना (Grammatical Construction) अथवा विचार-क्रम (Continuity of thought) मे थोडा सा भी व्याघात (interruptions) होता हो, वहां विषय को स्पष्ट करने के लिए "कामा" (,) का प्रयोग किया जाता है ।

(क) यदि किसी शब्द-मालिका (Series of words) अथवा शब्द-समूह (Groups of words) का प्रयोग दो दो की सख्या मे किया जाय तो उनको जुदा जुदा करने के लिए 'कामा' नहीं लगाते, हां यदि समूह बहुत लम्बे हों तो 'कामा' का प्रयोग करते हैं, जैसे—

पञ्जाब म गेहूं और चना बहुत उत्पन्न होता है ।

रामचन्द्र जी ने खर और दूषण को मार डाला ।

उसने अपने व्याख्यान में हिन्दुओं की शारीरिक-निर्बलता और उनके झूठे वैराग्य का खण्डन किया ।

उसन अपने व्याख्यान मे भारत के भिन्न भिन्न मतावलम्बियों के आपस के द्वेष-पूर्ण लडाई झगडा, और उससे उत्पन्न होने वाले भयङ्कर परिणामों का हृदय विदारक फोटो खींच कर श्रोताओं को विह्वल कर दिया ।

(ख) यदि उस मालिका मे तीन या उससे अधिक अवयव सयोजक-शब्दों (Conjunctions) से एक दूसरे के साथ मिले हुए हों तो 'कामा' की जरूरत नहीं, जबतक कि मालिका अथवा समूह लम्बा न हो, जैसे—

पण्डित जी का कालिदास और भवभूति और माघ के ग्रन्थों में भली प्रकार प्रवेश है।

पण्डित जी कालिदास, और माघ, और भवभूति, और बाण, और भारवि, और भर्तृहरि के ग्रन्थों से भली प्रकार परिचित हैं।

आर्मस-एक्ट की डीबेट के समय न तो मालवीय जी की मधुर वाणी, न बाबू सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी की वाक्पटुता, न माननीय गोखले की विद्वत्ता ने ही कुछ काम दिया।

(ग) यदि तीन या अधिक अवयवों की मालिका (Series) में संयोजक-शब्द (Conjunctions) न हों, केवल अन्त के दो अवयवों में हों, तो प्रत्येक समुदाय के बीच में 'कामा' दिया जाता है जैसे—

उसने बड़ा मधुर, ओजस्वी, और प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

राजपूत सैनिकों की वीरता, उनके सेनापतियों की सफलता, और उनकी स्त्रियों का सतीत्व-धर्म जगत प्रसिद्ध है।

(घ) 'इत्यादि' के पहले "कामा" आना चाहिए।

(ङ) साधारणतया जिन पदों (clauses) का प्रारम्भ ऐसे संयोजक-शब्दों, जैसे—"और", "परन्तु", "यदि", "जब कि", "जैसे", "जिस प्रकार", "तब से", "क्योंकि", "पश्चात्", "यद्यपि", "जब", "अन्यथा", "इन कारणों से", "तब तो", इत्यादि—से किया जाय, उनको शेष वाक्य से पृथक करने के लिए "कामा" लगाना चाहिए, जैसे—

जब वह रेल के स्टेशन पर पहुंचा तो रेल छूट गई, और उसका मित्र, जो उससे अन्तिम भेंट करने स्टेशन पर आया था, बिना किसी सूचना के चल दिया था। अब, जब कि तीन घंटे तक कोई दूसरी गाड़ी जाने वाली नहीं थी, उसने शहर में घूमने का विचार किया, यद्यपि वहां देखने लायक कुछ भी न था।

यदि उपर्युक्त संयोजक-शब्दों से प्रारम्भित पद अपने प्रथम पद के साथ यौक्तिक सम्बन्ध रखता हो (उसके बिना सम्बन्ध पूरा न होता हो), तो "कामा" का प्रयोग नहीं करना चाहिए, न ही "किन्तु", "यदि", "लेकिन" और "यद्यपि", इन संयोजक-शब्दों के पहले, जब इनका प्रयोग संक्षिप्त और संयुक्त वचनों में हो, 'कामा' लगाना ठीक होगा ; जैसे—

सत्य तो हो लेकिन मीठा ।

मैं आपके साथ तभी सहमत हो सकता हू यदि आप मेरे नियम स्वीकार करें ।

(च) ऐसे संयोजक शब्द, अव्यय, और शब्द-समुदाय, जैसे-"अब", "तब", "तथापि", "येन केन प्रकारेण", "किन्तु", "परन्तु", "पुन.", "सचमुच", "इसलिए", "और भी", "इसके आगे", "यद्यपि", "असल में", "सारांश", "उदाहरणार्थ", "अर्थात्", "बेशक", "इसके विपरीत", "दूसरी ओर", "आखिरकार", "निश्चित ही", "यथा", इत्यादि—यदि किसी वाक्य अथवा पद के आरम्भ मे निर्णय या व्याख्यार्थ आवे तो उनके पीछे "कामा" लगाना चाहिए। यदि वे (संयोजक शब्द, इत्यादि) किसी वाक्य या पद के बीच मे विचार अथवा रचना के व्यतिक्रम के लिए आवें, अथवा उनका प्रयोग किसी प्रकरण का सारांश कहते समय किया जाय, या किसी नई बात का समावेश करते हों तो उनके आगे पीछे "कामा" लगाए जाते हैं , जैसे—

सचमुच, उसके व्याख्यान की यही पहली दलील थी , अब, प्रश्न यह है , । तथापि, उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया , इसके आगे, बस पूछिए नहीं , बेशक, निश्चित ही, बात तो बेढब है, इस बात का, इसलिए, निर्णय होना कठिन है ।

वाक्य-रचना में यदि उपर्युक्त शब्दों का सम्बन्ध घनिष्ठ हो और कोई आवश्यकता न जँचे तो निम्नलिखित दशाओं में "कामा" लगाना अनुचित होगा—

(१) "इसलिए", "तथापि", इत्यादि यदि क्रिया के ठीक पीछे व्यवहृत हों।

(२) "सचमुच", जब किसी विशेषण, अथवा क्रिया-विशेषण के ठीक पहले, अथवा बाद में आवे।

(३) "शायद", "भी", "इसी प्रकार", इत्यादि अवयवों के साथ, जैसे—

वह बीमार था इसलिए आ हीं नहीं सका, यह आश्चर्य्य-जनक है तथापि सत्य है, उसकी दशा सचमुच धीरे धीरे सुधर रही है, वह शायद भविष्य का विचार कर रहा है, वह पुरुष विद्वान है और सदाचारी भी।

(छ) कामा का प्रयोग "न कि" से पहले ऐसे वाक्यों में नहीं आता, जैसे—

आदमी की परीक्षा उसके चरित्र से की जाती है न कि तुम्हारे जैसे बकवादी की गप्पों से।

(ज) यदि एक विशेष्य के पहले कई विशेषण हों, और अन्त के विशेषण का सम्बन्ध दूसरों की अपेक्षा विशेष्य के साथ अधिक स्पष्ट हो, तो उसके आगे कामा की जरूरत नहीं; जैसे—

अमरीका की प्रशसनीय राजनैतिक सस्थाएं . . . .।

एक सुन्दर युवा सन्यासी . ... ।

(झ) जो पद (Participial Phrases) मुख्य वाक्य की व्याख्या करते हों, वे प्राय: 'कामा' के अधिकारी होते हैं, जैसे—

काम में मग्न होने के कारण, उसने मेरी आवाज नहीं सुनी।

दिन भर के परिश्रम से थक जाने के कारण, वह अचेत सो गया।

(ञ) यदि किसी वाक्य के बीच में विरोधात्मक-पद (antithetical clause) का समावेश किया जाय तो उस विरोधात्मक-पद के पहले "कामा" लगाते है, जैसे—

हमारे वीर केशरी कांग्रेस में गये थे, इसलिए नहीं कि उन्हें कुछ कनवनशनिया कांग्रेस से सहानुभूति है, बल्कि उन्होंने तो वहा भी नरमदल-*वालों की धज्जियां ही उड़ाईं।*

(ट) प्रासंगिक (Parenthetical), अव्ययी भावात्मक (adverbial), अथवा समानाधिकरण (appositional), पदों का वाक्य में पृथक रचना-सम्बन्ध दर्शाने के लिए 'कामा' लगाते हैं। यदि उनका समावेश अनधिकार चेष्टा सम हो तो दोनों ओर डैश लगाना उपयुक्त होगा, जैसे—

फ्रांसीसी जाति, आम बोलचाल में, कला-निपुण कही जाती है; अंग्रेज लोग, प्रजातन्त्र राज्य-प्रिय जैसे कि वे हैं, तोभी अपने राजनीतिक और सामाजिक-संगठन में कुलीनता को ही मुख्य समझते हैं। तारकदास ने क्या किया—उसकी धूर्तता की बातें पीछे बतलाऊंगा—मेरे विरुद्ध सब लोगों को भड़काना आरम्भ किया।

(ठ) एक ही प्रकार के दो घनिष्ठ शब्द-समूहों को पृथक करने के लिए "कामा" लगाइए, यदि उनका पृथकत्व आवश्यक जचता हो, जैसे—

वह कौन था, यह मालूम नहीं हुआ।

खैर जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ।

(ड) भिन्न भिन्न नामों को "कामा" से पृथक करना चाहिए। जैसे—

लछमण जी, रामचन्द्र जी को, पिता तुल्य मानते थे।

पञ्जाब, संयुक्त-प्रान्त से, आबादी में कम है।

चील, कौए से, बड़ी होती है।

लखनऊ, इलाहाबाद से, बड़ा शहर है।

(ढ) गणित के अङ्कों को पृथक करने के लिए भी "कामा" का प्रयोग ज़रूरी है; जैसे—

३१४ के बाद ५२५, ५२५ के बाद ६१७ लिखिए; नवम्बर १, १६११।

(ण) विशेषणात्मक पद, जिनमें प्रशंसात्मक अथवा विरोधात्मक विशेषण हों, यदि किसी विशेष्य के पहले मुख्य विशेषण के सम्बन्ध में जोडा जाए तो उसको 'कामा' से पृथक करना चाहिए, जैसे—

ऐसा कठोर, यद्यपि सत्य और न्यायानुकूल, वचन उनको नहीं निकालना था, अब हम इतिहास के उस जगत-प्रसिद्ध, किन्तु भारत के लिए प्रलयकारी, युद्ध का वर्णन करते हैं, उस नाटक का अत्यन्त हृदय-विदारक, नही नहीं भारत माता के कलेजे को टूक टूक करने वाला, दृश्य लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है।

(त) यदि किसी शब्द अथवा शब्दों के समुदाय को वाक्य में दुबारा कहने की आवश्यकता न हो तो उसका संक्षिप्त रूप दर्शाने के लिए "कामा" लगाते हैं, जैसे—

लाहौर मे ऐसे पाच कालिज हैं, आगरे में, तीन; प्रयाग में, दो। मूल्य, दो रुपये।

(थ) साधारणतया, उद्गार-सूचक "हाय" के बाद 'कामा' लगाते हैं जैसे—

हाय, मैं जन्मते ही क्यों न मर गया!

(द) लिखते समय यदि किसी पुस्तक का निर्देश (Reference) करना पड जाय तो क्रमागत पृष्ठों में 'कामा' नहीं लगाते, बल्कि छोटा डैश लगाते हैं, जैसे—

देखो पृष्ठ सख्या ७, १०–११।*

---

*बाकी नियम 'डैश' प्रकरण में देखिए—लेखक

(म) तिथि अथवा पृष्ठ-निर्देश को छोड़ कर यदि सहस्रों की गणना को अङ्कों में लिखना हो तो सहस्र के बाद 'कामा' लगाना उचित है, जैसे—

१, ७५६, १०, ५२०।

पृष्ठ २५६०।

ईसा से २००० वर्ष पहले।

(न) महीना, वर्ष, और समय के ऐसे ही विभाग करते समय 'कामा' लगाना उचित है, जैसे—

फाल्गुण कृष्ण पक्ष, १९७१, बैसाख, १९७०, शुक्रवार, मई ३।

३—अर्द्ध-विराम—एक वाक्य में, व्याकरण-रचना अथवा भाव के, स्पष्ट भेद को दिखलाने के लिए अर्द्ध-विराम (;) का प्रयोग होता है, जैसे—

क्या हम इसी प्रकार मरे ही पड़े रहेंगे, चाहे कितना ही अत्याचार हम पर क्यों न हो, अथवा हम संसार को कुछ करके दिखलायेंगे?

यह सिद्धान्त वैज्ञानिकों के लिए ऐसे ही महत्व का है जैसे कि राजनीतिज्ञों के लिए; सचमुच इसपर संसार की भावी उन्नति निर्भर है।

(क) गणना में अङ्कों को 'अर्द्ध-विराम' से पृथक कर देना चाहिए। यदि वे बहुत लम्बे हों और व्याकरण-रचना के अनुसार उनमें पूर्ण-विराम, उद्गार-चिन्ह या प्रश्नात्मक चिन्ह आदि लगाना पड़े तो उस दशा में अर्द्ध-विराम की आवश्यकता नहीं; जैसे—

कांग्रेस कमेटी में प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी—पंजाब, ६; बंगाल, ७; मदरास, ९; बम्बई, ८, इत्यादि। परन्तु इन प्रश्नों ने, "आप कौन ब्राह्मण हैं?" "आप का शाखा क्या है?" "आपका गोत्र कौन सा है?" बस छद्मवेशी ब्राह्मण टिकटिकी की सारी पोल खोल दी।

(ख) यदि किसी विषय पर लिखते लिखते अन्य पुस्तकों का उसी सम्बन्ध मे हवाला देना हो तो इस प्रकार "अर्द्ध-विराम" लगाना चाहिए, जैसे—

मनु० अध्याय ७, श्लोक ६, वेदान्त अध्याय १, पाद १, सूत्र ५; रामा० सर्ग २०, श्लोक १५।

(ग) किसी सयुक्त-वाक्य के पदों का निकटस्थ सम्बन्ध तो न हो, किन्तु सम्बन्ध मौजूद हो और उनके बीच कोई संयोजक-शब्द भी न हो तो अर्द्ध-विराम का प्रयोग किया जाता है, जैसे—

खिड़की की राह से चोर भागा, मैं सन्न सा खड़ा रह गया।

जो स्थिर है वहा पीछे है, वही मृतप्राय है; उसी का अन्त निकट है।

(घ) "जैसे", "यथा" आदि शब्दो को जब उदाहरण देते समय व्यवहार करें तो इनके पहले "अर्द्ध-विराम" लगाते है।

४—पूर्ण-विराम—मोटे तौर से पूर्ण-विराम (।) खड़ी पाई का प्रयोग वाक्य की समाप्ति पर किया जाता है, जैसे—

यद्यपि उसकी बात मुझे पसन्द नहीं थी, किन्तु मैं क्या करता; लाचार था।

कच्चा माल बेचने वाला देश कभी धनवान नहीं हो सकता।

(क) आधुनिक मरहटी और हिन्दी लेखक प्रायः नामों तथा उपाधियों को सक्षिप्त करते समय कभी पुराना शून्य (०) का चिन्ह कभी अंग्रेजी ढग का पूर्ण-विराम (.) लगाते है, जैसे—

रा. सा. भालचन्द, गी. भाष्य।

पं० रामचन्द्र शुक्ल, प० बद्रीनाथ बी. ए.।

(ख) लेख में क्रमानुसार अङ्क देते समय भी अंग्रेजी ढंग के पूर्ण-विराम का प्रयोग करने की परिपाटी पड़ रही है, जैसे—

१. राजनीति-विज्ञान।

२. शासन-प्रणाली।

३. अर्थ-शास्त्र।

(ग) यदि किसी ज्ञापक वाक्य (Declarative Sentence) के अन्त में अवतरण आ जाय तो पूर्ण-विराम को अवतरण-चिन्हों (" ") के अन्दर रखना चाहिए; जैसे—

मेरे अन्दर से यह आवाज़ आई, "यहां से चले चलो, नहीं तो धोखा खाओगे।"

(घ) यदि किसी ज्ञापक वाक्य का अन्त कोष्टक () से हो तो पूर्ण-विराम को कोष्टक के बाहर रखते है; जैसे—

यह दो हजार वर्ष की बात है (विक्रम से ३० वर्ष पहले)।

(ङ) पुस्तक अथवा निबन्ध के शीर्षक के बाद भी पूर्ण-विराम नहीं लगाना चाहिए।

५—उद्गार-चिन्ह—उद्गार-चिन्ह (!) का प्रयोग साधारणतया विस्मय, भय, कष्ट, चिन्ता, लज्जा, निराशा, इच्छा, चिल्लाहट, विशेष सम्बोधन, और अस्वीकृति के भावों को स्पष्ट करने के लिए किया जाता है, जैसे—

"भारत माता की जय!" "ईश्वर न करे!" "अच्छा!" "मैं मरा! मैं मरा!!" "नहीं जी!" "हत्तेरे की!" "चोर! चोर!!"।

(क) लेख में जब किसी के वाक्यों को उद्धृत करते समय नुकता चीनी, आश्चर्य्य, अथवा व्यंग के भावों को प्रगट करना हो तो उद्गार-चिन्हों का कोष्टकों में प्रयोग करते हैं; जैसे—

व्याख्यानदाता ने कहा—"हिन्दोस्तान दिनोंदिन धनवान (!) हो रहा है। आज जितना रुपया यहां देखने में आता है, ऐसा कभी (!) देखने में ही नहीं आया।"

(ख) यदि "ओह" अथवा "हाय" के पीछे और भी उद्गार-सूचक शब्द आ जायें तो (अत्यन्त असाधारण दशाओं को छोड कर) इनके बाद कामा लगा कर उद्गार-चिन्ह अन्त में आता है, जैसे—

"हायरे, मैं लुट गया !" "ओ-हो, यह बात है !"

(ग) उद्गार-चिन्ह, अवतरण अथवा कोष्टक का भाग होने की दशा मे, उनके अन्दर ही रखा जाता है। उदाहरण दे चुके हैं।

६—प्रश्नात्मक-चिन्ह—प्रश्नात्मक-चिन्ह (?) प्रश्न पूछने अथवा शका प्रगट करने के सम्बन्ध में प्रयोग किया जाता है, जैसे—

"यह कौन है ?" कनपाटे बाबा जी ने अदालत में अपना नाम नाना यशवन्तराव, कानपुर के प्रसिद्ध नाना साहेब का पोता, बतलाया ?

(क) जो प्रश्न अस्पष्ट रूप में हों उनके पीछे प्रश्नात्मक-चिन्ह की जरूरत नहीं, जैसे—

वे मुझे पूछते थे कि क्या पण्डित जी बीमार हैं। ऐसा क्यों हो गया, यह बात मेरे समझ में नही आई।

(ख) अवतरण-चिन्हों के अन्दर प्रश्नात्मक-चिन्ह तभी रखना चाहिए यदि वह उनका अग हो, जैसे—

परन्तु प्रश्न यह है—"क्या मनुष्य संसार में दासता ही के लिए आया है ?"

क्या आप कभी "पेशावर" में थे ?

७—अवतरण-चिन्ह (Quotation marks)—यदि अपने लेख में किसी पुस्तक अथवा व्यक्ति का कथन उसके अपने शब्दों में उद्धृत करना हो तो उस कथन के आरम्भ

और अन्त, दोनों जगह, अवतरण-चिन्ह (" ") लगाते हैं; जैसे—

"विद्या विहीन पशु.", ऐसा हमारे विद्वानों का मत है।

(क) कोई शब्द या उक्ति, यदि अपने अर्थों सहित लिखी जाय तो उसके इर्द गिर्द भी अवतरण-चिन्ह लगाते हैं ; जैसे—

शब्द-पाण्डित्य की परिभाषा में "औचित्य" से अभिप्राय शब्दों का उचित प्रयोग करना है।

(ख) कोई असाधारण, पारिभाषिक, अथवा व्यंग-पूर्ण शब्द या उक्ति यदि वाक्य में आ जाय तो उसे भी उद्धरण-चिन्हों में धरते हैं . जैसे—

वह बात कहते समय "बूझो! बूझो!" कह कर चिल्लाता था, इसलिए मैंने उसका नाम "बूझो" रख लिया। वह बाज़ार में विचित्र "सुधरे-शाही" पोशाक पहन कर निकला। वह "बम-पुलिस" का जमादार चुना गया, मैंने उसके "ग़रीब-ख़ाने" की तलाशी ली, इससे फोनोग्राफ "महाशय" नहीं बन सकता।

(ग) जिन शब्दों अथवा पदों की ओर ख़ास ध्यान आकर्षित कराना हो, उनको भी उद्धरण-चिन्हों में रखना चाहिए; जैसे—

मानसिक-स्वतन्त्रता के इस गुण "सच्चरित्रता" की प्राप्ति . .. . ;

"विचार-स्वातन्त्र्य" से अभिप्राय, . ।

परमात्मा की प्राप्ति का साधन "शरीर" यदि बिगड़ गया।

(घ) ग्रन्थ-माला के नामों को उद्धरण-चिन्हों में धरते हैं ; जैसे—

"हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर" की पुस्तकें ;

"हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक-मण्डली" खण्डवा के उपयोगी ग्रन्थ।

(ङ) छोटी कविताओं के शीर्षकों को भी उद्धरण-चिन्हों में रखना उचित है ; जैसे—

पं० माधोप्रसाद मिश्र रचित कविता "युवा सन्यासी"; पं० प्रताप-नारायण मिश्र रचित "श्री पञ्चमी"।

(च) जहां साधारण स्पष्ट उद्धरण-वाक्य हो तो दो दो उद्धरण-चिन्ह लगते ही हैं, किन्तु यदि उद्धरण के अन्दर उद्धरण आ जाए तो वहां एक एक चिन्ह लगाते है; जैसे—

उसने कहा, "मैं हूं।"

"अच्छा", परमहस जी बोले, "अब मैंने उसे यह कहते हुए सुना 'मैं करूंगा', इसी से सब भेद खुल गया।"

" 'सौ स्याने एक मत' यह कथन बिल्कुल ठीक है", गुरु जी हंस कर बोले।

(छ) यदि लेखक का असली नाम देकर, पुस्तक के टाइटल पेज पर, उसका कथन उद्धृत करना हो तो उसके कथन के आगे पीछे अवतरण-चिन्ह नहीं लगाने चाहियें।

(ज) जब उद्धरण लिखते समय उसकी बीच बीच की बाधा का भी निर्देश कराना हो, तो उद्धरण-चिन्हों द्वारा वह भी किया जाता है; जैसे—

"मैं ?" उसने धीरे से कहा। "आपका मतलब मुझसे नहीं ? क्यों ?"—वह कुछ मुस्कराया, "वे मुझे दूर मदरास में भी 'झक्की सुबरु' कह कर पुकारते थे।" वह फिर मुस्कराया। "नहीं, आपका मतलब मुझसे नहीं।"

८—डैश (आदेशक)—वाक्य-विच्छेद, वाक्य-विराम, वाक्य-परिवर्तन-स्थिति, वाक्य-रचना में सहसा परिवर्तन, वाक्य में लम्बा विश्राम, भाव में स्पष्ट और आकस्मिक परिवर्तन—ये मोटे कारण डैश (—) प्रयोग करने के हैं; जैसे—

वे भेजते हैं—उनमें शक्ति है—अपने लड़के को अमरीका भेजने की ? कहा वीर युद्धोन्मत्त जाति के बच्चों का रंग ढग, और कहा सैकड़ों वर्षों से पराधीन जाति के बच्चों का खुशामदी जीवन—आकाश पाताल का अन्तर !

"संघ"—पाश्चात्य जातियों के इस शब्द में जादू भरा है।

आप इसे कर लेंगे—लेकिन नहीं, आप इसके सर्वथा अयोग्य हैं।

(क) उन प्रासंगिक (Parenthetical) पदों को, जो स्पष्ट तौर से स्वतन्त्र निवेशित लेख (Interpolation) की तरह हों, डैश में रखना चाहिए, जैसे—

यदि इतनी लम्बी तलवार हो—फ़रज़ कर लीजिए छ. फीट—तो हमारा काम निकल सकता है।

(ख) वाक्य के किसी शब्द या वचन (जिन्हें दोहराना पड़े) की सहायता, व्याख्या, अथवा विस्तार के लिए जब कोई पद जोड़ा जाय तो उसके आगे 'डैश' आना ज़रूरी है, जैसे—

अब हम आपको मेवाड़ के प्रसिद्ध राजर्षि का पवित्र जीवन-चरित्र सुनाते है—ऐसा जीवन-चरित्र शायद ही कभी आपके सुनने में आया होगा।

मेरे लिए स्वामी रामतीर्थ जी का असली वेदान्त मंगलमय है—वह वेदान्त जिससे देश का उत्थान हो।

(ग) किसी प्रासंगिक या प्रशंसात्मक पद के पहले यदि "जैसे" आ जाय तो वहां "जैसे" के स्थान पर "डैश" उपयुक्त होगा; जैसे—

नए नए प्रलयकारी यंत्र—पनडुब्बियां, भीमसेनी तोपें, ज़हरीली गैस, आकाशी विमान—ऐसे भयङ्कर निकले हैं कि जिनके आगे पुराना युद्ध-कौशल वृथा है।

(घ) जुदा जुदा टुकड़ों वाले वाक्यों में अन्त के सार रूप पद के पहले "डैश" लगाना चाहिए; जैसे—

स्वामी विवेकानन्द, वेदान्त के प्रतिनिधि होकर आये थे; श्रीवीरचन्द गान्धी, जैन धर्म के मुख्य स्पीकर थे; मिस्टर जोज़फ स्मिथ, बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे—बस यही तीन मुख्य लेक्चरार थे।

(ङ) "जैसे", "उदाहरणार्थ", "यथा" के बाद डैश लगाना चाहिए।

(च) जब किसी पाराग्राफ के प्रारम्भिक पद अथवा अपूर्ण-वाक्य के बाद, उसी को दोहराते हुए कुछ सिलसिलेवार शब्द या शब्द-समूह पाराग्राफ के रूप में कहने पड़ें, तो उसके पीछे 'डैश' लगाना चाहिए; जैसे—

(क) मेरा हुकुम है—

१. इसको मारो।

२. इसको बेंत लगाओ।

(छ) किसी पुस्तक अथवा लेखक के वाक्यों का अवतरण करने के बाद, उस पुस्तक अथवा लेखक का नाम नीचे देते समय उसके आगे "डैश" लगाना उपयुक्त है, जैसे—

"मुझे दासता से घृणा है;
दासता भयङ्कर व्याधि है।"
—देवदूत

साधारणतया, डैश, पूर्ण-विराम को छोड़ कर अन्य लेख-चिन्हों के सम्बन्ध में प्रयोग नहीं किया जाता; हां यदि डैश-मध्ये उद्गार-चिन्ह-सूचक अप्रधान-पद वाक्य में आ जाय तो उद्गार-चिन्ह दूसरे डैश के आगे रहता है। यह अंग्रेजी कायदा है। हमारे हिन्दी लेखक भी, जहां दूसरे चिन्हों के सम्बन्ध में डैश का प्रयोग आता है, वहां "कोलन" (:) लगाते हैं। मैं इसके विरुद्ध हूं। "कोलन" से हमारे विसर्ग (:) का भ्रम हो जाता है, इसलिए मैं 'कोलन' के स्थान पर भी "डैश" का प्रयोग ही ठीक समझता हूं। अतएव कोलन के नियमों को डैश में शामिल कर इस विषय की पूर्ति करता हूं।

(ज) किसी वाक्य के बाद यदि दूसरा वाक्य पहले वाक्य के अर्थों की महत्ता अथवा उदाहरण देने के लिए आ जाए तोभी "डैश" का प्रयोग करना चाहिए; जैसे—

अधिकांश देशों के अपने अपने जातीय फूल होते हैं—फ्रांस का कमल, इङ्गलिस्तान का गुलाब।

(झ) यदि किसी दूसरे का कथन लिखना हो, अथवा कोई लिष्ट देनी हो, या संक्षेप कथन करना हो, अथवा कोई लम्बा उद्धरण-वाक्य देना हो, जिसमें 'कि' को स्थान न मिले, तोभी 'डैश' लगाना चाहिए; जैसे—

हम उसकी स्पीच में से उद्धृत करते हैं—

निम्नलिखित वाक्यों को देखिए—

उसका संक्षेप रूप यह है—

इसकी पूर्ति ऐसे हो सकती है—

(ञ) चिट्ठी लिखते समय अभिवादन-सूचक शब्दों के बाद, या व्याख्यान-दाता का श्रोताओं अथवा सभापति को सम्बोधन करने के बाद, 'डैश' आना चाहिए; जैसे—

मेरे प्यारे देश-बन्धु—; प्रियवर—; महाशय—; माननीय सभापति-महोदय, और श्रोतृवृन्द—

(ट) घड़ी का समय अथवा रुपया, आने, पाई आदि लिखने में भी 'डैश' का प्रयोग करते हैं; जैसे—

संध्या ६–३०, मध्यान्ह बाद ३–१५, प्रभात ५–१०;

१५ रु०—१० आ०—६ पा०

६–बन्धनी या कोष्टक—कोष्टक ( ) [ ] अंग्रेज़ी में दो प्रकार का प्रयोग होता है–पहले को "Parentheses" और दूसरे को "Brackets" कहते हैं। दूसरे (Brackets) ब्रेकट [ ] चिन्ह को, अवतरण-सामग्री में निवेशित लेख (Interpolation) प्रगट करने के लिए ही, लेखक लोग विशेष कर प्रयोग करते हैं। यहां हम कोष्टक ( ) के नियमों को लिखते हैं।

(क) लेख लिखने में, जहां अंकों अथवा वर्णों द्वारा भाग-

संख्या का बोध कराना हो, वहां उन अंकों अथवा वर्णों को 'कोष्टक' में रखते हैं।

(ख) कोष्टक का निम्नलिखित दशाओं में व्यवहार होता है—(१) किसी शब्द का अर्थ, व्याख्या, या नोट को वाक्य के अन्तर्गत करने के लिए, (२) किसी भूल का समाधान करने के लिए, (३) छूट की पूर्ति हेतु ; जैसे—

वह बड़ा अजीबोग़रीब (विचित्र) आदमी था।

उन्होंने (नरमदल वालों ने) अपने विचार प्रगट किए।

ज्यूंही पण्डित मदनसिह (मदनमोहन) मालवीय संसकिरत (संस्कृत) बोलने लगे।

डाक्टर मूलचन्द टण्डन (प्रयाग)।

१०—योजक-चिन्ह (Hyphen)—दो या दो से अधिक शब्दों के सामासिक पदों में योजना-सूचक चिन्ह "योजक-चिन्ह" (-) लगाते हैं, जैसे—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पिष्ट-पेषण;

आश्चर्यजनक-घंटी ; अमरीका-भ्रमण।

(क) लिखने में जहां सतर के अन्त में अधूरा शब्द रह जाय, वहां ऐसा चिन्ह देते हैं ; जैसे—

धर्मात्मा मनुष्य वह है जो देश-सेवा को मुख्य कर्तव्य सम-झता है।

११—वर्जन—किसी उद्धरण में जहां वाक्य या शब्द-समुदाय का किसी कारण वश, अनावश्यकता अथवा अस्पष्टता के हेतु, परित्याग करना पड़ता है वहां (* * *) ऐसे अथवा (   ) ऐसे चिन्ह लगा देते हैं। जहां प्रकरण में कुछ भाव पूरा कर नया भाव प्रारम्भ करना हो वहां भी इन चिन्हों के प्रयोग की शैली पड़ रही है।

* * * * *

कविता में पहली तुक के अन्त में एक पाई (।) और दूसरी तुक के अन्त में दो खड़ी पाई (॥) लगाने का पुराना नियम है। रामायण में सब जगह ऐसा है। आधुनिक हिन्दी लेखक कविता में अर्द्ध-विराम (;) तथा कामा (,) को भी स्थान देने लगे हैं।

नए और पुराने ढंग के लेखक किसी किसी शब्द को संक्षिप्त करने में शून्य (०) का प्रयोग भी करते हैं।

कथात्मक-निबन्ध

१—कथा का लक्षण—सत्य अथवा मन घड़न्त घटनाओं के लेख को कथा कहते हैं। शुद्ध-कथा तो असभव ही समझिए, हां छोटे छोटे टुकड़े भले ही शुद्ध-कथा का रूप धारण कर सकें, जैसे—

"मैं चौक गया और एक टोपी खरीद लाया"

यह तो हुई शुद्ध-कथा, परन्तु प्रत्येक सत्य घटना का सम्बन्ध स्थान और व्यक्ति से होता है, इसलिए उसमें कुछ स्थापना (Setting) और पात्र-समावेश करना ही पड़ता है। उसी स्थापना और पात्र-समावेश के कारण ही कथा में रोचकता और मनोरंजकता आती है, जैसे—

"अपनी पांच बरस की अवस्था में मै एक दिन गरमी के

दिनों में अकेला ही चौक गया, और बिना किसी की सहायता के अपने लिए टोपी खरीद लाया।"

अब इसमें गरमी का दिन "स्थापना" और पांच वर्ष की अवस्था यह "पात्र-समावेश" कर दिया गया।

२–कथा का उद्देश्य—कथा का उद्देश्य मानसिक-कल्पना में जागृति उत्पन्न कर घटना-क्रम मे रुचि उत्पन्न करा पाठक को शिक्षा देना है। पढ़ने अथवा सुनने वाला घटना-क्रम को समझ जाए, इतना ही नहीं, बल्कि उसकी मनोरंजकता भी हो। मुख्य बात कथा में शिक्षा-प्रद मनोरंजकता है।

३–कथा के ढंग—यूं तो मुख्य तरीका कथा कहने का यह है कि घटनाओं को उनके घटित क्रमानुसार कहता चला जाय, किन्तु प्राय. ऐसा करना नीति-विरुद्ध और असंभव भी हो जाता है। तोभी प्रसंग चलना चाहिए, कथा का तार क़ायम रहे। अतएव कथा आरम्भ करने से पहले चार मुख्य प्रश्नों पर विचार कर लीजिए—

१. घटना-क्रम किस प्रकार होना चाहिए?
२. कौन सी घटनायें कथा में रहेंगी?
३. पात्रों का समावेश कैसे किया जायगा?
४. कथा की स्थापना का परिचय कैसे देना होगा?

४–घटना-क्रम—समाचार-पत्रों* का ढंग तो यह है कि वे सब से पहले घटना के फल-स्वरूप को पाठकों के सामने रखते हैं। यदि बाढ़ आ गई हो तो मोटे मोटे अक्षरों में कितने ग्राम डूब गए, धन जन की कितनी हानि हुई, कौन सी सरकारी इमारतें नष्ट हो गई, यह सब पहले आयेगा।

*हिन्दी-समाचार-पत्रों की हम बात नहीं करते। अभी उनकी प्रारम्भिक अवस्था है। उनकी उन्नति के लिए देश-काल अभी अनुकूल नहीं—लेखक

इस ढंग के अनुसार, समय समय पर अन्य लेखक भी चलते हैं। इसमें विशेषता यह है कि पाठक का ध्यान तत्काल आकर्षित हो जाता है, उदाहरणार्थ-"मैं वह लड़का हूं जो कन-कौआ उड़ाता उड़ाता सातवीं मंज़िल से गिर गया था और ज़रा चोट नहीं लगी। आपको मैं अपनी कथा सुनाऊं?" फौरन ही उसकी कथा सुनने को चित्त चाहेगा। सातवीं मंज़िल से गिर कर बच जाना कोई ठट्ठा तो हैही नहीं।

कथा का मध्य पकड़िए—आप अपनी कथा का न तो फल ही बतलाइए, न उसको आरम्भ से ही कहिए, बीच का रास्ता अधिक अच्छा होगा। इससे कथा में तेजी और बल आ जायगा। फरज़ करो एक प्रसिद्ध गो-भक्त अपनी जीवन-घटना का वर्णन करने लगा है। आप आरम्भ करते हैं—"पांच वर्ष हुए मेरे जीवन में एक विचित्र घटना घटी। उसने मुझे वकील बनने की अपेक्षा गो-सेवक बना दिया। मुझे वह सुबह कभी न भूलेगी। इक्के में बैठा हुआ मै ईसाइयों के कृषि-कालेज की ओर जा रहा था। जब जमुना जी के पुल के पास पहुंचे तो पुलीस वाले ने इक्का रोक दिया; कहा—'गोरू परली पार से आ रहे हैं, उनको निकल जाने दो।' पन्द्रह बीस मिनट के बाद डेढ़ दो सौ गाय, बैल, और बछड़ों का झुण्ड पुल की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। उनके पीछे यमराज रूप छः कसाई बड़े बड़े लट्ठ लिए हकाते आ रहे थे। नीचे गरदन किए हुए, अत्यन्त उदास, उन निरपराध पशुओं ने जब मेरी ओर देखा तो मेरी आंखो से आंसु बहने लगे। 'क्या इन दीनों की कोई नहीं सुनेगा?' यह शब्द मेरे मुंह से निकले। पशु तो चले गए, परन्तु मेरे जीवन में भारी परिवर्तन हो गया।

"इसके बाद मैंने क्या किया, यह बतलाने से पहले मै आप को अपना कुछ परिचय देता हूं। मेरा जन्म फाल्गुण कृष्णपक्ष,

१९३०, में पञ्जाब के पेशावर नगर में हुआ था।" बस इतना काफ़ी है। अब हम उस धर्मात्मा पुरुष की जीवनी और उसके ब्रत-पालन की पूरी कथा सुनना चाहते हैं। उसने अपना जीवन परिवर्तन करने वाली घटना को वर्णन कर अपना हृदय हमारे सामने रख दिया है।

यदि कथा में एक व्यक्ति के जीवन-चरित्र की बजाय एक से अधिक पात्रों का वर्णन करना हो तो काम कठिन हो जाता है। फरज़ करो हमें शिवाजी की अफजुलखां से मुलाक़ात का वर्णन करना है। हमें पहले दोनों व्यक्तियों की मुलाकात के कारणों का वर्णन करना होगा। हमें एक के बाद दूसरे का परिचय देकर, फिर दोनों को इकट्ठा लाकर, उनकी मुलाक़ात के समय दोनों का साथ साथ ब्योरा देना पड़ेगा। इसी प्रकार जितने अधिक पात्र होंगे उन सब का पहले परिचय करा फिर कथा में उनको यथास्थान वर्णन करना उचित है।

५-द्वैधी भाव (Suspense)—सब दशाओं में कथा का घटना-क्रम द्वैधी भाव की आवश्यकता पर अवलम्बित है। पढ़ने वाले के सामने यही प्रश्न रहता है-"इसके बाद क्या होगा?" यदि उसको निश्चय हो जाय कि यह होने वाला है तो वह पुस्तक को उठा कर रख देता है। यह द्वैधी भाव दो प्रकार का है—(१) वह कथा का परिणाम जानने का इच्छुक है, (२) वह परिणाम किस प्रकार निकलता है। जबतक वह दोनों बातें जान नहीं लेता, उसकी उत्सुकता कथा में बनी रहती है। इस-लिए पहले परिणाम बतला कर आप केवल उसकी उत्सुकता भले ही बढ़ा लें, परन्तु ज्यूंही वह उस परिणाम पर पहुंचने वाली सड़क को पहचान लेता है, उसकी उत्सुकता जाती रहती है। यही कारण है कि नवीन परिणाम-बोधक पुरानी कथा तथा साधारण परिणाम-सूचक नए ढंग की कथा, दोनों से ही पाठकों

का मनोरंजन होता है। इसके विपरीत यदि पाठक कथा की घुण्डी को स्वयं ही खोल लेता है तो फिर उसकी रुचि कथा से जाती रहती है।

६–घटनाओं का चुनाव—दूसरी बात घटनाओं के चुनने की है। यदि कहें कि सार्थक घटनाओं को चुनिए, तो प्रश्न होता है—"सार्थक क्या ?"

सब से पहले कथा सम्बन्धी आवश्यक घटनाओं को लीजिए। उनका चुन लेना सहज है, क्योंकि उनके बिना तो कथा बन ही नहीं सकती। आप नाव पर चढ कर गंगा जी में गए; रास्ते में नाव उलट गई, मल्लाह गगा जी में कूदा, आप बच गए—यह तो मुख्य घटनायें हो गईं। इनका चुन लेना तो सहज है, कठिनाई तो इन्हीं मुख्य घटनाओं को विकास करने वाली बातों को चुनने में है।

७–विकास करने वाली घटनायें—विकास करने वाली वे घटनायें हैं जो मानसिक-कल्पनाओं को जाग्रत कर कथा में रुचि उत्पन्न करती हैं। मकान को आग लगी, वह जल कर राख हो गया, एक बच्चा जल मरा, दूसरा बच निकला—ये सब आवश्यक घटनायें हैं। अब इनमें रुचि कैसे उत्पन्न की जाय ? इसका उत्तर कथा की पोषक घटनायें देती हैं। इसी का कारण तलाश कर बालकृष्ण का उसमें प्रवेश कराइए। अपने छोटे भाई, कुञ्जी, के साथ वह घर की ड्योढ़ी में रखे हुए सूखे घास के पास खेलता है; एक पड़ोसी का लड़का मुन्नालाल वहां आ गया; उसकी जेब में चुरट थे; लड़के घास में खेलने लगे; अधजला चुरट घास में गिर गया। इसी प्रकार कथा का विकास होने लगता है और उसमें अन्य

सैंकड़ों बातों का प्रवेश करा देने से उसकी अच्छी कथा बन सकती है। घटनाओं को किस नियम से चुनते हैं?

८–घटनाओं की स्वाभाविक चित्ताकर्षकता—एक बात तो स्पष्ट है। कथा को विकसित करने वाली वे ही घटनायें हो सकती हैं जो स्वयं मनोरंजक हों। इसमें भिन्न भिन्न रुचि होने से मत-भेद हो सकता है। जिस प्रकार के लोगों के लिए कथा लिखी जाती है उनका भी ख्याल करना पड़ता है, और स्वयं लेखक की अपनी रुचि पर भी बहुत कुछ निर्भर है। प्रत्येक खास उदाहरण में लेखक अपने अभ्यासानुकूल रोचक घटनाओं को चुन सकता है।

९–कथा के अभिप्राय का ज्ञान—प्रत्येक कथा का मुख्य अभिप्राय होना चाहिए। आप जो कहना चाहते हैं उसका आपको विशेष ज्ञान होना जरूरी है। उसका पहले निश्चय कर लीजिए। समय नष्ट करने और ऐय्यारी के कुमकुमे छोड़ने के लिए कथायें नहीं लिखी जातीं। ऐसी पुस्तकें वे लिखते हैं जो स्वयं निकम्मे हैं और दूसरों का समय नष्ट कर धन बटोरना चाहते हैं। यदि आपने अपनी कथा में बालकृष्ण की वीरता, उसका आग से युद्ध, उसकी अपने भाई को बचाने की चेष्टा, इत्यादि बातें बतानी हैं और वही आपकी कथा का नायक है, तो अन्य सब घटनाओं को संक्षेप रूप दे बालकृष्ण के सम्बन्ध की बातों को अधिक कहना उचित होगा। कहने का तात्पर्य्य यह है कि अनर्थक घटनाओं को बिल्कुल छोड़ कर जिस मुख्य उद्देश्य को आपने सामने रखा है, उसी का विकास करने वाली बातों, पात्रों, और घटनाओं का समावेश उपयुक्त होगा।

१०–पराकाष्ठा (Climax)—कथा के उपर्युक्त मुख्य अभिप्राय को उसकी पराकाष्ठा कहते हैं। कथा में उसकी परा-

काष्ठा से अभिप्राय उसका सब से अधिक मनोरंजक स्थल है—वह स्थल जिसकी ओर सब घटनायें चलती हैं। ऊपर मकान के जलने के उदाहरण में कथा की पराकाष्ठा लड़कों के बच कर निकल भागने के स्थल में हैं। अफ़जुलखां और शिवाजी की मुलाक़ात में रोचकता की पराकाष्ठा अफ़जुलखां के घायल होकर गिरने में है। प्रसिद्ध युद्ध वाटरलु की कथा में पराकाष्ठा का स्थल नेपोलियन का परावर्तन (Retreat) है। आप अनर्गल बे सिर पैर के पोथे लिख कर दस बीस पचास सन्ततियां रच डालें, आप की कथा में निकम्मे लोगों का मन भी लग जाय, आप पुलीस के दफ़्तर अथवा समाज की गंदगी छान कर हज़ारों "रहस्य" छाप डालें, परन्तु वे सब किसी काम के नहीं हैं। कथा का एक निश्चित मुख्य लक्ष्य होना चाहिए, एक ख़ास निशाना, एक ख़ास उपदेश, एक ख़ास सिद्धि होनी चाहिए। बिना उसके कथा ऐसी ही है जैसे उद्देश्य के बिना नौका; जो हवा में इधर उधर डोल रही है।

११–घटनाओं का यौक्तिक-क्रम—जब आप अपनी कथा का लक्ष्य, उसका उद्देश्य, उसकी पराकाष्ठा निश्चित कर लें तो प्रश्न यह होता है कि इस लक्ष्य की सिद्धि कैसे हो? छलांगे भरने से काम नहीं चलता; यहां घटनाओं का सिलसिला ठीक होना चाहिए। अफ़जुलखां, जो अपने बादशाह से यह कह कर चला था—"मैं उस पहाड़ी चूहे को मूसदानी में बन्द करके लाऊंगा"—जिसके पास इतनी ज़बरदस्त फ़ौज थी, जो स्वयं भी प्रांडील था, उस पहाड़ी आदमी से कैसे मार खा गया! इस मुख्य बात को आपने अपनी कथा में दिखलाना है। इसके लिए आपको घटनाओं का यौक्तिक-क्रम (Logical Sequence) तलाश करना होगा; जैसे—

"एक कील के कारण, घोड़े की नाल न लग सकी; नाल के अभाव से, घोड़ा नहीं मिला; घोड़े के अभाव से, सवार नहीं पहुंचा, सवार के न पहुचने के कारण, फौज हार गई; फौज के हारने से, राज्य हाथ से चला गया—ये सब घटनायें केवल एक कील के कारण हो गईं !" घटनाओं का यह ठीक क्रम है। आप इनका विकास कर सकते हैं। सत्य कथाओं में आप घटनाओं को चुनते हैं, काल्पनिक कथा में आपको घटनायें घड़नी पड़ती हैं। दोनों दशाओं में आपको विकास-क्रम का ध्यान रखना पड़ेगा।

१२–पात्रों का समावेश—तीसरा प्रश्न पात्रों के समावेश का है–"पात्रों" का कथा में प्रवेश कैसे कराया जाय? "पात्र" से अभिप्राय उनका है जो कथा में खिलाड़ी है; चाहे वह कुत्ता, बुद्धू, स्मिथ, देवदत्त, या आपकी मानसिक-कल्पना का कोई भूत हो।

(१) पात्रों का कथा के आरम्भ में परिचय—पहला तरीका यह है कि आप अपनी कथा के आरम्भ में प्रधान पात्रों का परिचय करा, पाठकों की उनसे मुलाकात करा दीजिए। जब वे उन खिलाड़ियों से परिचित हो जायेंगे तो उनकी रुचि कथा में लग जायगी। यह तरीका स्पष्ट है। इससे आप मज़े में अपने सब पात्रों को साथ लेकर कथा कह सकते हैं। पाठक के मन पर उनका संस्कार होने से वह आसानी से उनके कामों को समझ सकता है। यदि कथा लम्बी हो तोभी जब आप अपने किसी पात्र को सामने लायेंगे तो पाठक तत्काल उसको पहचान लेगा। यदि अन्य नये पात्रों का प्रवेश कराना होगा तो उनका भी कुछ परिचय करा कथा में शामिल करना सहज है।

(२) कथा के प्रसार के समय पात्रों का परिचय—दूसरा ढंग, पात्रों को बिना किसी परिचय के, मैदान में छोड़ देना है। जैसे जैसे कथा की वृद्धि होती जाय, उसी के अनुसार आवश्यकतानुकूल पात्रों का परिचय भी करा दिया जाय। यह साधारण ढंग है।

१३-पात्र-परिचय में वर्णन और व्याख्या—पात्रों का परिचय कराने में, वर्णन और व्याख्या, दोनों का काम पड़ जाता है—एक की सहायता से तो पात्र का चित्र पाठक के हृदय पर खिंच जाता है, दूसरी पात्र का स्वभाव-ज्ञान कराने में सहायता देती है। पाठक की बडी इच्छा कथा पढ़ते समय यह रहती है कि कहानी चलती चले। जहां पात्रों के सम्बन्ध में अधिक वादा-विवाद बढाने के कारण कथा रुकी, पाठक का दिल फौरन ऊबने लगता है।

१४-पात्रों के चरित्र-विकास का ढंग—ऊपर जो कथन किया गया है वह पात्रों के परिचय के सम्बन्ध में है। पात्रों का चरित्र-विकास, व्याख्या और वर्णन को छोड़ कर, वार्तालाप और कथा द्वारा भी हो सकता है, अर्थात्—पात्र क्या कहते हैं, वे क्या करते हैं—आप इन दो तरीकों द्वारा पाठकों की उत्सुकता बढ़ा सकते हैं। कथा द्वारा उनके चरित्र-विकास की बात के विषय में विशेष क्या कहें, आप घटनाओं के क्रम को चतुराई से चुन कर अपने ख़ास ख़ास पात्रों में पाठक का अनुराग उत्पन्न कर सकते हैं।

१५-कथा-स्थापना (Setting) का परिचय—अब स्थापना के प्रारम्भ करने का प्रश्न सामने आता है। दो तरीक़े जो पात्र-परिचय के सम्बन्ध में बतलाये हैं—कथा के आरम्भ

में और कथा-वृद्धि के साथ साथ—उनका यहां पर भी विचार किया जाता है।

प्रारम्भ में कथा-स्थापना—यदि कथा की स्थापना आवश्यक, या जटिल, अथवा दोनों हैं तो उनको आरम्भ में ही स्थान देना चाहिए। फरज करो यदि युद्ध की कथा है तो पहले युद्ध-भूमि का वर्णन आवश्यक होगा। किसी बेलून की घटना की कथा में पहले बेलून की रचना का अति स्पष्ट विवरण ज़रूरी है, किसी रहस्य की कथा है तो रहस्य-पूर्ण घर का वर्णन नितान्त उपयुक्त है। परन्तु यह ध्यान रहे कि स्थापना का लम्बा वर्णन लम्बी कहानी का सूचक है। स्थापना की लम्बाई ऐसी न हो जाय कि पाठक रास्ता ही भूल जाय।

कथा-वृद्धि में स्थापना का परिचय—जैसा पहले पात्रों के विषय में लिखते हुए कह चुके हैं, परिचय का यह ढंग साधारण है। जैसे जैसे कथा का उत्तरोत्तर विकास होता जाय, उसी के अनुसार साथ साथ आवश्यक स्थापना भी कर सकते हैं। यहां इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि स्थापना-वर्णन जहां तक हो सके सक्षिप्त रूप में हो; कथा की गति रुके नहीं, चाहे वह छोटी कथा हो चाहे बड़ा उपन्यास। वर्णन और व्याख्या की कठिन समस्याओं को लेखक शीघ्र हल नहीं कर सकता, उसकी गति कम होही जाती है—वह ठोकर भी खा जाता है। कथा के आस पास, इर्द गिर्द, निकटवर्ती (Surroundings) पदार्थों का वर्णन स्पष्ट और सक्षिप्त होना चाहिए।

१६—"स्थापना" का लक्षण—कथा में "स्थापना" से अभिप्राय किसी दृश्य—खेत, जंगल, पर्वत, नदी, आदि—का वर्णन करना नहीं; बहुत से लेखक इसी में अपना समय खर्च कर उसे "स्थापना" के गले मढ़ देते हैं। "स्थापना" से अभि-

प्राय उस मञ्च से है जिस पर खेलाड़ी लोग आकर अपना खेल दिखलाते हैं। वहां स्थान-वर्णन (Topographical) सम्बन्धी आवश्यक ब्योरे की जरूरत है; शीत, उष्ण, आवश्यक रंग, शब्द, और गंध सभी मेल ठीक ठीक रहने चाहियें। एक निपुण लेखक के हाथ में यह जादू है, वह इसके द्वारा कथा की रोचकता कई गुणा बढ़ा सकता है; नावाकिफ़ के हाथ में यह विष है।

१७–कथा की भाषा—कथा व्यक्ति की मानसिक-कल्पना और हृदय को उत्तेजना देती है, और क्यूंकि यह घटनाओं का प्रयोग करती है, इसलिए स्वाभाविक ही यह हलके भोजन की तरह शीघ्र हजम होनी चाहिए; मार्मिक और दार्शनिक निबन्धों के लच्छों की इसमें आवश्यकता नहीं। इसके पाराग्राफ और वाक्य व्याख्यात्मक और तार्किक निबन्धों की अपेक्षा छोटे होने चाहियें। अतएव कथा की भाषा का मूल गुण यह होना चाहिए कि पाठक पढ़ता जाय और समझता जाय, उसको भाष्य की ज़रूरत न पड़े। लम्बे पाराग्राफों मे परिणाम देर से निकलता है, इस कारण वे गति के बाधक हैं। लम्बे वाक्यों में कई भाव एकत्रित होने से जटिलता आ जाती है, इसलिए वे भी कथा के उपयुक्त नहीं। छोटे वाक्य क्रमानुसार भाव प्रगट करते है, इस कारण वे घटना-क्रम वर्णन करने के लिए अत्यन्त लाभकारी हैं, और वे आसानी से समझे भी जाते हैं। यह भी स्मरण रहे कि वाक्यों की लम्बाई तथा रचना मे लगातार एक तान, एक स्वर, भी लेखन-कला का भारी दोष है।

इस दोष को दूर भगाने का उत्तम इलाज "क्रिया" का अनुकूल प्रयोग समझना है। कथा में मुख्य बात घटना है; घटना में कार्य्य प्रधान है, कार्य्य (action) का बोधक केवल क्रिया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि कथा-स्थापना करने में क्रिया-

प्रयोग ठीक जानना लाज़मी बात है। कथा में कर्म-वाच्य क्रिया की अपेक्षा कर्तृवाच्य क्रिया का प्रयोग अधिक उपयोगी है; जैसे—

"बहुत से अमरूद तोडे गए थे। वे बड़ी मुश्किल से खाए गए। रात को बडी देरी से घर पहुंच सके थे।"

यह कर्मवाच्य क्रिया है। अब इसी का कर्तृवाच्य स्वरूप देखिए, जैसे—

"हमने बहुत से अमरूद तोडे, बडी कठिनाई से हमने उनको खाया। रात को बड़ी देर से घर पहुचे।"

१८—वार्तालाप (Dialogue)—निबन्ध के अन्य भेदों में भी वार्तालाप का प्रयोग किया जाता है, किन्तु कथा में इसका खास स्थान है। इसके दो उपयोग हैं—कथा की गति बढाना और पात्रो का परिचय देना। उच्च कोटि की वार्तालाप-शैली से दोनों काम निकल सकते हैं। यह भी हो सकता है कि वार्तालाप के द्वारा ही कथा कही जाय, किन्तु यह उस समय जब कि लेखक का घटनाओं की अपेक्षा पात्रों से अधिक-तर अनुराग हो। इसके इस नाटकीय गुण की उपयोगिता स्पष्ट है। जो मजा पात्र के अपने कथन में आता है, जो चरित्र-विकास उसका अपना कथन सुनने से हो सकता है, वह पात्र सम्बन्धी बातें लिख देने से नहीं हो सकता।

१९—वार्तालाप की रचना—यदि बातचीत को ओ-जस्वी बनाना है तो उसे पात्र के अनुकूल बनाइए। इससे पाठक को पात्र का चित्र खॅचने में सहायता मिलती है। यह ज़रूरी है कि पाठक ने जो चित्र पात्र का खॅचा है, पात्र उसी के अनुकूल व्यवहार करे। राना प्रताप की बातचीत राना

प्रताप की शान के अनुसार हो, एक स्कूली लड़का स्कूली-लड़के की तरह बोले ; एक भूत भूतों ही के तरह व्यवहार करे।

कुछ विशेष नियम वार्तालाप के भी हैं । वार्तालाप लम्बे वाक्यों में नहीं हुआ करता, इसलिए लेखक को वार्तालाप में छोटे वाक्यों का उपयोग करना चाहिए। संयोजक और अर्थ-व्यंजक पदों का भी कुछ काम नहीं, क्योंकि उनका प्रयोजन बोलने में स्वर को विकृत रूप (Inflections) देने से निकल आता है। प्रभावशाली वार्तालाप लिखने का एक मात्र उपाय यही है, चाहे ऐतिहासिक कथा हो अथवा मनघड़न्त उपन्यास, कि लेखक को अपने पात्रों का यथार्थ ज्ञान हो, और उसको इसका भली प्रकार अनुभव हो कि ख़ास अवस्था, ख़ास योग्यता, और ख़ास शिक्षा के पात्र स्वाभाविक ही किस प्रकार बोलते चालते हैं।

२०—वार्तालाप का समावेश कैसे हो—साधारण ढंग वार्तालाप समावेश का यह है कि वार्तालाप के आरम्भ करने से पहले उसने कहा, हरि ने कहा, कृष्ण ने कहा, आदि लिख कर वार्तालाप आरम्भ कर देते हैं। यह जी उबाने का तरीक़ा है। प्रकृति विभिन्नता चाहती है, और वह विभिन्नता बोलने वाले की आवाज़ के अनुकूल क्रिया का प्रयोग करना है; जैसे—उसने पुकारकर कहा, वह बक उठा, वह रो कर बोला, उसने मेरे कान में फुसफुसाया, वह चिल्लाया, वह झिल्लाया, वह धीरे से बोला, वह बिलबिलाया, वह बड़बड़ाया, उसने ज़ोर दिया, वह गर्जा, उसने सब उगला दिया, वह विलाप करने लगी। जहां दो व्यक्तियों की बातचीत हो वहां किसी परिचय-दायक क्रिया की ज़रूरत नहीं; वहां बातचीत ज्यू की त्यू रख देनी चाहिए।

२१—गल्प (Short Story)—अब तक जो कह चुके हैं वह दोनों, ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक, उपन्यासों के लिए बराबर उपयुक्त है। उपन्यास-भेद पर कोई विस्तृत विवाद यहां अनावश्यक है। अब हम केवल "छोटी कहानी" के सम्बन्ध में दो चार मोटी मोटी बातें कहते हैं।

(क) साधारण छोटी कहानी एक निश्चित घुण्डी से शुरू होती है और उसी निश्चित घुण्डी को खोलती है। इस घुण्डी के बीच जो गांठें हैं, कहानी का नायक उन्हीं को खोलता है। जैसी कठिन गांठे होंगी वैसी ही अधिक मनोरंजकता उस कहानी से होगी। लेखक की चतुराई इसी में है कि गांठों के भिन्न भिन्न रूप कर दे ; उनके खोलने की कठिनाइयों को बढ़ा दे, और पाठक को गल्प के पात्रों से अच्छी प्रकार मिला दे। "आश्चर्य्य-जनक-घंटी" में घंटी आप ही आप बजती है, यह उसकी घुण्डी है। उसके खोलने में कई गांठों को खोलना पड़ता है, गांठ के बाद गांठ आती है, रोचकता बढ़ती जाती है। बेचारे स्काट के साथ हम बड़ी सहानुभूति करते हैं। गल्प में इन्हीं गांठों को "स्थिति" (Situation) कहते हैं।

(ख) गल्प की गांठों को "स्थिति" कहते हैं। बहुत सी ऐसी, पराकाष्ठा तक पहुचाने वाली, गांठों की माला को गल्प-विन्यास (Plot) कहते हैं। इसका मोटा उदाहरण देखिए। बद्रीप्रसाद जंगल में लकडी काटने जाता है, वहां उसको शेर मिला। यह पहली स्थिति है। प्राण बचाने के लिए भागता हुआ वह नदी में घुसता है ; यहां मगरमच्छ का सामना हुआ। यह दूसरी स्थिति है। वह मगरमच्छ से डर कर पीछे हट कर गिर जाता है, शेर उस पर से कूद कर मगरमच्छ के मुंह में जा गिरता है ; वे दोनों एक दूसरे को मार डालते हैं। यह गल्प की पराकाष्ठा है। ऐसी स्थितियों का विकास करने के

लिए कल्पना-शक्ति चाहिए। बिना कल्पना-शक्ति के कोई मनोरंजक गल्पें नहीं लिख सकता।

(ग) गल्प की स्थितियों का मनोरंजक होना ही काफी नहीं है, बल्कि उनका विकास भी यौक्तिक (Logical) होना चाहिए। पाठक की अभिलाषा दो प्रकार की होती है—वह एक स्थिति से निकल कर दूसरी में अकस्मात ही प्रवेश करना चाहता है, और साथ ही छलांगें मार कर नहीं। "यह बात है! मैंने पहले नहीं समझा था!" ये शब्द उसके मुंह से निकलने चाहियें। इसी अचिन्तित-पूर्व और अवश्यम्भावी के ताने बाने को द्वैधावृत्ति कहते हैं। यही है जो कथा में बराबर रुचि बनाये रखती है।

(घ) स्थितिओं का पराकाष्ठा से ही यौक्तिक सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, बल्कि पात्र के साथ भी इनका वैसा सम्बन्ध दर्शाना आवश्यक है। अच्छी गल्प में पात्रों का सम्बन्ध बिगड़ जाने से स्थितियों में इच्छानुकूल रोचकता नहीं ला सकते। परिणाम कुछ का कुछ निकल आता है।

२२—गल्प का मुख्य पात्र—गल्प में पहले मुख्य पात्र का निश्चय कर लेना ज़रूरी है। पात्र लड़का है या लड़की; स्त्री है या पुरुष; जवान है या बुड्ढा—यह पहले तै कर लेना ज़रूरी है। एक दस वर्ष के लड़के ने अपने बाप की जेब में से अठन्नी चुरा ली है, बाप छिप कर उसकी चोरी देखता है। बाप स्वयं इस फिकर में है कि अपने बेंक से, जहां वह नौकर है, दस हजार के नोट चुरा ले। अब इस कथा में नायक कौन रहेगा? जो नायक होगा उसी की दृष्टि के अनुसार कथा लिखी जायगी। "आश्चर्य्यजनक-घंटी" में यदि स्काट की बजाय उसकी स्त्री घंटी का आप ही आप बजना सुनती तो

उस कथा का सारा रंग बदल जाता। पात्र चाहे कई हों, परन्तु मुख्य पात्र की दृष्टि के अनुसार, उसका पक्ष लेकर, गल्प लिखी जायगी, तभी उसका प्रभाव भी पड़ सकता है।

२३—अन्य पात्रों का परिचय—उपर्युक्त कथन से यह नहीं समझना चाहिए कि अन्य पात्रों की कुछ महत्ता ही नहीं। सब पात्रों के सम्बन्ध में प्रश्न यही रहता है—इनमें जान कैसे डाली जाय? लेखक उनका वर्णन करे, व्याख्या भी दे, किन्तु यह बहुत ही सूक्ष्म रूप में होनी उचित है। अच्छे उपन्यासकार दूसरे पात्रों द्वारा उनका विकास करते हैं। कुछ उनकी बात-चीत से उनका पता चलता है, अन्त को जब वे कुछ करके दिखलाते हैं तो उनका अधिक भेद खुलता है। इसका सम्बन्ध गल्प की स्थिति से है। गल्प में, "स्थिति" प्रधान फलदायक तत्त्व है।

—:०:—

अभ्यास (Exercise)

१—निम्नलिखित शीर्षकों में से किसी एक का, काल-क्रमानुसार संक्षिप्त ब्योरा लिखिए—

१. नौकरी की ढूंढ़।
२. स्कूल में मेरा पहला दिन।
३. मैं फुटबाल का कप्तान कैसे बना।
४. मैंने तैरना कैसे सीखा।
५. मेरी निराहार अंधेरी रात।
६. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का प्रथम दिन।

२—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर लम्बा पाराग्राफ लिखिए। पहले परिणाम दिखलाइए, बाद में अन्य बातों का ब्योरा दीजिए—

१. मोटरकार की घटना।
२. पिछले शनिवार का फुटबाल मैच।
३. पुस्तक की ख़रीद।
४. रहने के लिए कमरे की तलाश।
५. मेरा रिवालवर से पहला परिचय।
६. खोए हुए बच्चे की तलाश।

३—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक का ब्योरा, घटनाओं के यौक्तिक-क्रमानुसार, ठीक ठीक दीजिए—

१. पानीपत की पहली लडाई।
२. विश्वासराव की पूना से पानीपत को कूंच।
३. कालिज-समाचार-पत्र का प्रथम वार्षिकोत्सव।
४. मेरी बद्रीनारायण-यात्रा।
५ बग-विच्छेद कथा।

४—निम्नलिखित गल्पों में से किसी एक के साथ सम्बन्ध रखने वाले दो तीन पात्रों का चरित्र-वर्णन कीजिए—

१. मेरी पहली मुक्केबाजी।
२. विष्णुदास के साथ नौका-भ्रमण।
३ सम्मेलन के सभापति का चुनाव।
४. तांतिया टोपी सम्बन्धी छोटी कहानी।
५. छौलदारी के नीचे पहली रात।

५—निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर कथा लिखिए। पात्रों का चरित्र-परिचय कथा वृद्धि के साथ साथ कीजिए—

१. माधो ने मेरी क्यों बिगाड़ी।
२. हकीकतराय का बलिदान।
३. चतुर्वेदी की अनुदारता।
४. बिहारीलाल की भूल।
५. तेजसिंह का देश-द्रोह।

६—निम्नलिखित सूचनाओं में से किसी एक का सहारा लेकर वार्तालाप बनाइए—

१ हेमचन्द्र को उसका मित्र नौकरी से घृणा का उपदेश देता है।
२ शालिग्राम जगन्नाथ सेठ से नई पत्रिका निकालने में सहायता मांगता है।
३. अध्यापक विद्यार्थी से अन्त को यह सत्य उत्तर सुनता है—"जानता हू पर बतला नहीं सकता।"
४. स्वराज्य का प्रेमी किसी बोदे राजनीतिज्ञ से मिलने जाता है।
५. रामचन्द्र, मौलवी कमालुद्दीन को, राष्ट्र-भाषा हिन्दी की महिमा समझाता है।
६. कोटूमल अपनी बहिन यशोदा को स्त्री-शिक्षा के गुण बतलाता है।

—:०:—

वर्णनात्मक-निबन्ध

१-"वर्णन" किसे कहते हैं—जब आप किसी तसवीर को देखें, या कोई गीत सुनें, या कोई खुशबू सूघें, तो उस समय दो में से एक अवस्था आप के मन की होगी।

आपका मन तस्वीर का अभिप्राय, राग की बनावट, खुशबू का सारूप्य जानने का यत्न करेगा। अथवा उस पर अच्छे या बुरे नए संस्कारों की छाप लगेगी—वे संस्कार जो स्मरण-शक्ति अथवा कल्पना में जागृति पैदा कर उन्हें चैतन्य करते है। लेखन-कला में मन का ऐसा उद्योग, जिसमें वह उन उपर्युक्त संस्कारों के अर्थ समझने की चेष्टा करता है, व्याख्या या स्पष्टीकरण कहलाता है; मन का दूसरा उद्योग, जब वह उन संस्कारों को अनुभव-जन्य बनाने का यत्न करता है, वर्णन या विवरण करना कहते है। व्याख्या और वर्णन में असली भेद मन के इस उद्योग की विभिन्नता में है।

यह सच है कि वह लेख जो व्यक्तिगत पदार्थों का निरूपण करता है प्राय वर्णनात्मक कहलाता है, और व्याख्यात्मक-निबन्ध की सीमा गुणों या जाति-संज्ञा निर्देश तक ही परिमित है, तथापि वर्णन से अभिप्राय किसी एक निश्चित वस्तु का वर्णन, उसकी स्थिति समझा देना, ही नहीं है। सच्चा वर्णन वह है जो चित्र ही न खेंचे, बल्कि चैतन्य करने वाले संस्कारों की जागृति भी उत्पन्न कर दे।

वर्णन-शैली मे इसी खास गुण को लाना हमारा लक्ष्य है। फरज करो कोई आप से अपने कमरे का विवरण लिखने के लिए कहे। आप झट अपने कमरे की लम्बाई, चौडाई, ऊंचाई, उसमे रखी हुई वस्तुओं के नाम, इस ढग से लिखना आरम्भ करेगे जैसे कोई अजायबघर की सूची तय्यार करता है। यह उसी दशा में ठीक हो सकता है जब आप साधारण तौर पर अपनी माता, या मित्र को अपने निवासस्थान का ब्योरा देने लगे हों परन्तु यह प्रभावोत्पादक वर्णन नहीं कहलाता।

२–हृदय-ग्राह्य वर्णन का ढंग—अब प्रश्न यह है कि वर्णन को हृदय-ग्राह्य कैसे बनाया जाय, अर्थात् विचार-तत्त्व को

प्रयोग करने की अपेक्षा चित्र-शैली द्वारा मन पर प्रभाव डालने का तरीका, कौन सा है ? अच्छा परीक्षा कीजिए।

वर्णन में रोचकता का अधिकांश भाग वह होता है जो कर्म-इन्द्रियों—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—के संचालन द्वारा हम पर प्रभाव डालता है। पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए इनका सचालन सब से अधिक गौरव-युक्त है। दृष्टि-गोचर संसार में आंख को कौन सी वस्तु सदा आकर्षित करती है ? गति (Movement)। वृक्ष से पक्षी उड़ता है, बछिया उछलती है, कनकौया उड़ता है, तालाब में मछली कूदती है, इन सब की ओर गति (संचालन) के कारण आंख का ध्यान खिचता है, और हम उनको देखते है। इसलिए वर्णन में प्रभाव भरने के लिए इन्द्रियों का सचालन मुख्य साधन है।

३—वर्णन "शब्दाडम्बर-चित्र" नहीं—लेखक के मन में यह खास बात अच्छी प्रकार खचित हो जानी चाहिए। वह वर्णन को शब्द-चित्र (Word-painting) समझता है, इसलिए चुन चुन कर अच्छे अच्छे विशेषण देकर वह अपने वर्णन को भर देता है। यह भारी भूल है। चित्र निश्चल है; उसमें गति नहीं। शब्द बराबर चलते हैं. एक भाव के बाद दूसरा भाव क्रम-बद्ध चलना चाहिए, उनकी समकालीन गति नहीं हो सकती। एक बात यह भी है कि चित्र (Painting) केवल आंख द्वारा मन को आकर्षित करता है वर्णन में सब इन्द्रियों का काम है। अधिकांश लोगों के दिमाग में देखने की आंख ही नहीं, उनके सामने कुशल चित्रकार की तसवीर मामूली चीज़ है। बहुत से लोगो में सुस्पष्ट सस्कारों की जागृति शब्द, गन्ध और रस से ही हो सकती है। इसलिए अच्छा शुद्ध वर्णन

चित्रकारी नहीं; वर्णन वह कला है जिसमें चित्रकारी का प्रवेश भी नहीं हो सकता।

४–वर्णन में विशेषता—कोई वस्तु जो मानसिक-कल्पना में जागृति उत्पन्न करे, वर्णन-सीमा के अन्दर शामिल है। परन्तु मानसिक-कल्पना में जागृति उत्पन्न कौन करता है? विशेष ब्योरा। जैसे, यदि हम शाक तरकारी का वर्णन करें तो केवल "शाक" कह देने से बहुत कम लोगों में कल्पना-जागृति होगी, परन्तु यदि हम कहें "गोभी", "आलू", "भण्टा", "लौकी", "भिण्डी", तो उन तरकारियों की ख़ास शकलें हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं उनका आकार, परिमाण, रंग, स्वाद, गन्ध, सब संस्कार जाग उठते हैं। "आलू-कचालू" कहने से मुह में पानी भर आता है। यह परिणाम केवल मूर्तिमान पदार्थों का नाम ले देने से ही नहीं निकलता, बल्कि हमारी स्मरण-शक्ति सदा विशेष-संज्ञा-सूचक पदार्थों से ही जाग्रत होती है। जब हम उन विशेष पदार्थों का नाम लेते हैं तो हमारी स्मरण-शक्ति हमें सहायता दे झट उनका चित्र हमारे सामने ला उनके गुण-दोषों के संस्कारों को जाग्रत कर देती है। हम अपने मित्र की "नेकी" के गुण को स्मरण नहीं रखते, बल्कि उसकी शीलता के कामों को स्मरण रखते हैं—वे काम जिनमें उसने उस गुण को प्रगट किया है। उसकी साधुता के बाहर के चिन्ह—उसकी निर्मल आंख, उसकी प्रेमभरी हसी, उसकी मीठी प्यारी आवाज—हमें उसकी याद दिलाते हैं। इसलिए हमारी मानसिक-कल्पना, जो स्मरण-शक्ति का दूसरा स्वरूप है, विशेष-संज्ञा-बोधक पदार्थों के वर्णन से ही जाग्रत होती है।

फिर समझ लीजिए। हमारी मानसिक-कल्पना-शक्ति को जगाने वाली वह चीज नहीं, बल्कि हमारा उसके साथ सह-

बात हमारी उस शक्ति का प्रेरक है। किसी नवयुवक का वर्णन करते समय यदि हम कहें-"उसके लाल लाल गाल और स्वच्छ सफेद दान्त"—तो पढने वाले पर बुरा संस्कार नहीं पडता, किन्तु यदि हम कहें—"उसके कुत्ते जैसे सफेद दान्त और गोभी के फूल जैसे लाल लाल गाल"—तो संस्कार बडा बुरा पड़ता है। क्या लाल गाल और सफेद दान्त दोनों में एक जैसे नहीं ? हैं, किन्तु कुत्ते और गोभी के फल के साथ तुलना कर देने से उनका सहवास उन अच्छे संस्कारों, लाल और सफेद, को भी मिटा देता है।

अतएव वर्णन के यथार्थ और पूर्ण अर्थ यह है कि पाठक की स्मृति द्वारा उसकी मानसिक-कल्पना को प्रेरणा की जाय। वह स्मरण-शक्ति पाठक के संस्कारों का कोष है, जहां कर्म और ज्ञान इन्द्रियों के संस्कारों का खजाना है। यदि आप मुझे किसी गैया का आकार समझाना चाहते हैं तो आप उसके साधारण गुणों का वर्णन मेरे सामने करेंगे, किन्तु यदि आप अपनी घरेलू गैया का वर्णन मेरे सामने कहते हैं—मुझे उस खास निश्चित पशु से परिचित कराने के लिए—तो आप साधारण गैया सम्बन्धी सब बातों को तो कहेंगे ही, पर साथ ही उसका दहना टूटा हुआ सींग, उसके माथे का सफेद दाग, उसके छोटे स्तन, इत्यादि वे खास निशानों की ओर, जो उसे अन्य गायों से अलग करते हैं, मेरा ध्यान अधिक आकर्षित करेंगे। बस मेरा ध्यान खींचने वाले यही खास निशान, यही विशेष निश्चित ब्योरा उस गैया का यथार्थ वर्णन है।

५—वर्णन सामग्री का संगठन—जैसे उत्कृष्ट व्याख्या और शुद्ध तर्कना शक्ति के लिए निर्दोष-मनन आवश्यक साधन है, ऐसी कोई शर्त वर्णन के सम्बन्ध में नहीं। इसी हेतु बच्चों को आरम्भ से ही वर्णन का अभ्यास कराना चाहिए, उनको इसमें

उत्साहित करना उचित है। वर्णन सामग्री के संगठन में तोभी दो चार मुख्य बातें हैं जिनका विचार आवश्यक है।

६-दृष्टि (Point of View)—पहले तो वर्णन लिखने वाले की अपनी दृष्टि होनी चाहिए। यदि उसकी वर्णन-दृष्टि में कुछ भेद हो जाय तो उसे पाठक को उसकी निश्चित सूचना देनी आवश्यक है। किसी पर्वत के शिखर पर बैठ कर जो कुछ आप सुनते हैं या देखते हैं, उसका वर्णन करते हुए आप दूरस्थ जंगल के देवदारों की मर मर ध्वनि अथवा पत्तियों की चहचहाहट का जिकर न करें, यह स्पष्ट है। परन्तु वहां, उस ऊंचाई पर, जो संस्कार—क्षोभ, चंचलता, अथवा मनोविकार—आपके शरीर पर होते हैं उनका वर्णन आप उस दृष्टि से कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि आप अपने किसी वाकिफकार से घृणा करते हैं तो उसका वर्णन करते हुए आप अपनी ओर से झूठ बातें न मिला कर भी बुरा संस्कार दे सकते हैं। फरज करो महीने के बाद उसी के साथ आपकी मित्रता हो जाती है तो उस समय आप उसकी ज़रूरत से जियादा प्रशंसा कर देंगे। पहले आपकी दृष्टि उसकी तरफ रुचि की थी, बाद में वह अरुचि में बदल गई। इसलिए लेखक की दृष्टि (Point of View), उसका पक्ष, उसकी रुचि अरुचि लेख की वर्णन-सामग्री-संगठन करने का निर्णय करती है।

७-कथा और वर्णन—रुचि निश्चित हो जाने के बाद वर्णन-सामग्री की योजना कैसे हो? उसका एक अत्यन्त अच्छा ढंग तो कथा का उपयोग करना है। उसके दो तरीके हैं—एक तो आप स्वयं देखते हुए अपने रास्ते के पदार्थों का वर्णन करते चलें, दूसरे जिनका वर्णन आप करें वे आपके पास से गुज़रते जांय।

८—भौगोलिक-सामग्री का संगठन—यह स्पष्ट है कि जब किसी स्थान, व्यक्ति, पदार्थ का सविस्तर वर्णन करना हो तो उसको क्रम-बद्ध उस स्थान की भौगोलिक स्थिति के अनुसार लिख सकते है। किसी मनुष्य का वर्णन हो तो उसको सिर से पैर तक—केश, आंखे, नाक, मुख, ठोडी, कंधे, कमर, टांगें, पाओं—सब क्रमानुसार कहेंगे, किन्तु ऐसा ढंग कभी तो अच्छा होता है कभी नहीं। यदि मनोविकार-दृष्टि (Emotional Point of View) उनके अनुकूल नहीं, या कथा-कल्पना में कुछ बाधा पडती हो तो यह ढग अच्छा नहीं। हां किसी बडी वस्तु का व्योरेवार वर्णन करना हो तो यह तरीका उत्तम है। ऐसी दशा में भी यह अच्छा हो यदि स्थान सम्बन्धी खास खास बातों का, स्थान के अपने क्रम के अनुसार, वर्णन किया जाय, प्रत्येक पदार्थ का कुल के साथ सम्बन्ध होने से जो संस्कार होता है उसको भी सविस्तर व्योरे से पहले या पीछे कहते चलिए।

९—वर्णन की भाषा—जब वर्णन में खास वृत्तान्त के वर्णन पर जोर दिया जा चुका है तो यह स्पष्ट है कि विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों का भी व्यवहार किया जाय। परन्तु यह स्मरण रहे कि वर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए थोड़े चुने हुए शब्दों और शीघ्रगामी वाक्यों (Rapid Sentences) की नितान्त आवश्यकता है। यूं तो अभिप्राय-पूर्ण थोड़े वाक्य सभी निबन्धों में चाहियें, किन्तु वर्णन में तो इस नियम को तोडना बिल्कुल क्षन्तव्य नहीं। "व्याख्या" और "तर्क" में विषय को भली प्रकार स्पष्ट करने के लिए शब्द विस्तार हो जाय तो कोई बात नहीं, किन्तु वर्णन में मनोरंजकता का बलि-दान किए बिना स्पष्टता आनी चाहिए। चूंकि हमने मानसिक-

कल्पना को जगाना है, इसलिए उत्तेजना (Stimulation) हमारी वर्णन-पताका होनी चाहिए। कई ब्योरे हों, किन्तु चुने हुए शब्दों में, यह नियम प्रत्येक ब्योरा लिखने में मुख्य रखना चाहिए।

सब से पहले विशेषणों और क्रिया-विशेषणों को जवाब दीजिए। लेखकों को प्रत्येक नाम के साथ एक विशेषण और प्रत्येक क्रिया के साथ एक क्रिया-विशेषण लगाने की भद्दी आदत पड़ जाती है। बहुत से तो विशेषणों और क्रिया-विशेषणों का ढेर लगा देते हैं। यह सर्वथा निरर्थक है। प्रत्येक विशेषण और क्रिया-विशेषण का आदर कर उसके उचित स्थान पर उसका प्रयोग करना चाहिए। वह, लेखक की मेहरबानी से वहां पर उपस्थित न हो, बल्कि अपने अधिकार से उसने वह स्थान पाया हो। इसका आसान ढग यह है—आप अपने वाक्यों की रचना ऐसी कीजिए कि विशेषणों और क्रिया-विशेषणों के विना ही आपका अभिप्राय स्पष्ट हो जाय। इसके लिए आपको विशेष्य और क्रियाओं के चुनन में बुद्धि से काम लेना पड़ेगा। इस प्रकार के अभ्यास से आपकी वर्णन-शैली प्रभावोत्पादक हो जायगी और आप शब्दों का यथार्थ उपयोग करना सीखेंगे।

१०—सारांश—जब आप वर्णन करने लगें तो (१) विशेष-सञ्ज्ञा-बोधक शब्दों से स्मृति द्वारा मानसिक-कल्पना को उत्तेजित कीजिए, (२) अपनी एक निश्चित दृष्टि (Point of View) रखिए, या जब आप अपना पक्ष बदलें तो अपने पाठकों को उसकी सूचना दीजिए, (३) कथा द्वारा वर्णन-शैली की सहायता करने से न चूकिए, (४) अपने सविस्तर ब्योरे को स्थान के क्रमानुसार रखिए (यदि कोई और अच्छा उपाय न मिले), (५) जहां तक हो सके वृत्तान्त कहने

में संक्षेप से काम लीजिए और उसमें विशेष्य और क्रिया का अधिक प्रयोग कीजिए। आपका वर्णन छोटा और विचित्र (Striking) हो। मानसिक-कल्पना-शक्ति (घटना सम्बन्धी बातों को छोड़ कर) अधिक प्रयोग से शीघ्र थक जाती है।

—:o:—

अभ्यास (Exercise)

१—नीचे लिखे विषयों का, सुझाई हुई बातों के अनुसार, वर्णन कीजिए; अपनी निश्चित सम्मति (Point of View) रखिए—

(क) पुस्तकालय;

दरवाज़े—ऊंचाई, आकार, आवाज।

खिड़कियां—ऊंचाई, आकार, स्थिति, रंग।

असबाब—आकार, स्थिति, रंग।

पुस्तकें—स्थिति, रंग, परिमाण।

पाठक—संख्या, भाव, पोशाक।

साधारण—काग़ज की खरखर, पेंसिल का हिलना, सांस, सूर्य्य की रोशनी, हवा।

(ख) बाज़ारी दृश्य—

स्थान—तंग, ऊंची इमारतें, धूल, इक्का, घोड़ा, गाड़ी, ठेला कबूतर, फलों के टोकरे, खोंचा, धूयां।

लोग—रंग, गति, शोर।

व्यक्ति—छावड़ी वाले, मेवाफरोश, गन्ने वाला, घासीराम के चने, गांओ के लोग, यात्री, विदेशी घुमकड़, पुलीस का सिपाही।

साधारण—शोर, इक्के, गैया, कुत्ते, लू, गाड़ी, सौदा

बेचने वालों की आवाज़ें, गन्ध, हलवाई, मिठाई-वाला, चुरट, अमरूद, सड़क की कीच, गोबर, लीद, मोरी।

२—नीचे लिखे विषयों पर दो छोटे छोटे पाराग्राफ लिखिए। पहले में पाठक को समझाने की चेष्टा कीजिए; दूसरे में अनुभव कराने की—

(क) मेरा सहपाठी।
(ख) पढ़ाई के समय स्कूली कमरा।
(ग) मेरी पुरानी जान पहचान का मकान।
(घ) मेरा प्यारा कुत्ता।
(ङ) पहाड़ का ग्राम।
(च) इक्का।
(छ) पिछला मुहर्रम।
(ज) उजाड़ गली।
(झ) भरत मिलाप।
(ञ) आर्य्य-समाजी नगर-कीर्तन।
(ट) राधास्वामियों की सगत।

३—नीचे लिखे विषयों में रंग, गति, और शब्द का सविस्तर बोध कराइए—

(क) गंगातट पर सूर्य्योदय।
(ख) मन्दिर में पूजा।
(ग) स्कूल में आध घंटे की छुट्टी।
(घ) सभा विसर्जन।
(ङ) व्याख्यान से पहले सभा-मण्डप।

४—घर की रसोई, मित्र के यहां की दावत, ब्रह्मभोज को लिखते हुए उसमें गति, गन्ध और स्वाद का वर्णन कीजिए।

५—गंगा जी की बाढ़ का वर्णन गति और शब्द को मुख्य रख कर कीजिए—

६—कथा के ढंग से निम्नलिखित विषयों का वर्णन लिखिए—

(क) रेल से शहर में प्रवेश।
(ख) स्कूल से घर आना।
(ग) रेल की टक्कर।
(घ) दगल।
(ङ) हरिद्वार।
(च) मसजिद में नमाज़।

—:o:—

व्याख्यात्मक-निबन्ध

१—व्याख्या की सामग्री—व्याख्यात्मक-निबन्ध भावों को कथन करता है, पदार्थों को नहीं; यह सार्वलौकिक नियमों का बखान करता है, व्यक्तिगत नहीं। आप किसी ख़ास इञ्जिन का नाम लिए बिना स्टीम-इञ्जिन के मूल तत्व की व्याख्या कर सकते हैं, किसी ख़ास व्यक्ति को सामने रखे बिना दया के गुण का बखान कर सकते हैं, किसी विशेष व्यवसाय का नाम लिए बिना वाणिज्य-नियमों की महत्ता समझा सकते हैं। वह शब्द, जो सार्वलौकिक भाव का बोधक है, संज्ञा (Term) कहलाता है। व्याख्या का उद्देश्य इन संज्ञाओं को स्पष्ट करना है।

२—वर्णन और कथा के साथ व्याख्या का सम्बन्ध—किसी सत्ता, जैसे पशु या पक्षी, को समझने के लिए

प्रायः हमारे सामने उस संज्ञा का प्रतिनिधि कोई मूर्ति रहती है, अर्थात् किसी विशेष पशु या पत्ती की आकृति। यहां वर्णन, व्याख्या की सहायता करता है, यहां, बेशक, इन दोनों के भेद की लकीर खेंचना कठिन है। यदि आप अपने किसी मित्र को पक्षियों के स्वभाव, उनकी उड़ान, उनकी किलोलों को समझाने की चेष्टा करेंगे तो बहुत संभव है कि आप किसी ख़ास पत्ती का वर्णन कर बैठे। उस एक पत्ती का उदाहरण सामने रख कर आप सामान्य पक्षि-जाति का विषय समझाते हैं। इसी प्रकार यदि आप क्षमा की व्याख्या करते हैं तो अपने किसी ख़ास मित्र का उदाहरण देकर उस विषय का सामान्य रूप से बोध कराते हैं; अर्थात् आप विशेष-सञ्ज्ञा से जाति-बोधक व्यापक-संज्ञा का परिज्ञान कराते है। व्याख्यात्मक-निबन्ध का यही "जाति-निर्देश" (Generalization) धर्म है। दो पशु एक जैसे नहीं होते, किन्तु उनमें कई बातें एक जैसी होती है। वर्णन केवल ख़ास व्यक्ति (Individual) पर ज़ोर देता है, व्याख्या उनके साधारण साझे गुणों को कहती है।

व्याख्या में जिस प्रकार वर्णन का प्रयोग करते हैं, वैसे ही कथा को भी काम में ला सकते हैं। "नौका कैसे बनती है" यह व्याख्यात्मक-निबन्ध है। इसी का शीर्षक बदल दीजिए—"मैंने कैसे नौका बनाई"—तो यह कथा हो गई, जिसमें घटनाओं का ब्योरा है, परन्तु वे घटनायें उन्हीं नौका बनाने के नियमों की व्याख्या करती हैं। पत्र और पत्रिकाओं के अधिकांश विशेष लेख ऐसी ही व्याख्यात्मक ढग पर लिखे होते हैं। ऐतिहासिक लेख अधिकांश इसी प्रकार के होते है—रूप कथा का, किन्तु उद्देश्य व्याख्यात्मक।

३—लक्षण (Definition)—सामान्यतया, शुद्ध व्याख्या का आरम्भ लक्षण से होता है। यह एक विशेष संज्ञा को, जो

विचाराधीन है, उसकी अपनी जाति में प्रवेश तथा उसका उस जाति के अन्य सभ्यों से सम्बन्ध कराती है ; जैसे—

टेनिस वह खेल है जिसमें रेकट से गेंद को मार कर चलता रखते हैं।

इसमें टेनिस संज्ञा को जाति-वाचक खेल संज्ञा में प्रवेश करा, उसकी मुख्य बात कह कर, उसका उसकी अपनी जाति के अन्य खेलों से सम्बन्ध करा दिया है।

४—व्याख्या का तरीक़ा—लेकिन लक्षण तो व्याख्या का आरम्भ मात्र है। अब लक्षण के अन्तर्गत संज्ञाओं की व्याख्या होनी चाहिए। व्याख्या प्रायः एक संज्ञा का स्पष्टीकरण नहीं करती, बल्कि संज्ञाओं के संघात (Combination) की प्रकाशक है। यह एक भाव को प्रत्यक्ष नहीं करती, बल्कि एक स्थिति की आविष्कारक है। तब इसकी (व्याख्या की) विधि क्या है ?

व्याख्या की विधि को थोड़े शब्दों में ऐसे कह सकते हैं— जो संज्ञा (Term) या स्थिति (Situation) के प्रतिनिधियों (Factors) को सामने रख कर पीछे से उनका सर्वाङ्ग-विस्तार करती है।

प्रतिनिधि या नियोजक (Factors) क्या बला हैं ? सुनिए। गणित में छः और पांच, तीस के नियोजक हैं ; इनको आपस में गुणा करने से तीस होता है। इसी सादृश्य से, किसी स्थिति को पैदा करने वाले कारण उसके नियोजक कहलाते हैं।

फरज करो, एक अनुभवी इञ्जीनियर के तौर पर, आपको मध्य भारत के किसी ऐसे भाग की दशा जानने के लिए भेजा गया है जहां एक धनिक पारसी लोहे की खान का व्यवसाय आरम्भ करना चाहता है। आपको इस व्यवसाय का पूरा ज्ञान है ; दूसरे शब्दों में आप लोह-खान सम्बन्धी नियोजकों

(Factors) को समझते हैं। आप उन (एक एक नियोजक) के सहारे उस भाग की परीक्षा करते हैं, और प्रत्येक परीक्षा की महत्ता-पूर्ण बातों का पारस्परिक सम्बन्ध दिखला कर अपनी सम्मति को अपनी रिपोर्ट में विस्तार रूप से लिखते हैं, यही व्याख्या है। आपका धनिक पारसी उस भाग की दशा जानना चाहता है, आप उसकी व्याख्या करते हैं।

इसलिए शुद्ध निर्दोष व्याख्या दो बातों पर अवलम्बित हैं-

(१) स्थिति के प्रधान (underlying) नियोजकों का पता लगाने की योग्यता।

(२) विस्तार करने वाले वृत्तान्तों का अधिकता से समावेश।

पहली (योग्यता) की प्राप्ति के लिए कोई पुस्तक आपकी सहायक नहीं कर सकती।

बातें सोच निकालने की शक्ति—बुद्धि का उत्कृष्ट गुण आप स्वयं पैदा कीजिए। इसके बिना आप किसी बात को स्पष्ट समझा नहीं सकते। बाकी रहे विस्तार करने वाले वृत्तान्त, सो उनका विचार करते हैं।

५—व्याख्या सम्बन्धी ब्योरा—आप अपने विषय का तीन प्रकार के ब्योरों से विस्तार कर सकते हैं—(१) वह ब्योरा जो आपके विषय का प्रतिपादक है; (२) वह ब्योरा जो आपके विषय का विरोधक है; (३) वह ब्योरा जो आपके विषय का सादृश्य (Like) और असादृश्य (unlike) बतलाता है।

अब ऊपर के उदाहरण को इनके अनुसार घटाइए। (१) जिस भू-भाग, खान, की आप परीक्षा करने गए थे, उसमें

कौन कौन खनिज पदार्थ थे ? (२) उसमें कौन कौन से नहीं थे ? (३) किस किस धातु से उनका सादृश्य है ?

और उदाहरण लीजिए। अब्राहम लिङ्कन का चरित्र-वर्णन करना है। (१) वे जन-साधारण के प्रिय थे, वे निर्भीक थे, वे देश-भक्त थे; दीर्घदृष्टा थे, वे क्षमाशील थे। (२) वे बड़े विद्वान नहीं थे, कभी कभी बोलने में सावधान न थे। (३) सादगी, स्वार्थत्याग, और देश-हित में वे गेरीबाल्डी के सदृश्य थे, किन्तु अन्य किसी बात में समता न थी। दूसरे इटेलियन नेताओं में से उनकी अधिक समता मेजिनी से थी। जार्ज वाशिङ्गटन से उनका सादृश्य बहुत कम है, वेब्स्टर से उनकी प्रकृति, स्वभाव, और आदर्श में बहुत अधिक भेद था।

६—उदाहरणों की महत्ता—व्याख्या के वृत्तान्तों को सरल और स्पष्ट करने में उदाहरण सब से अधिक सहायता देते हैं। बहुत थोड़े लोग अमूर्त (abstract) विषयों को आसानी से समझ सकते हैं। उदाहरणों, सचित्र उदाहरणों से ही व्याख्यात्मक निबन्ध सुस्पष्ट होता है। आप अपने मित्र को ठोस नियमों द्वारा समझाना चाहते हैं। वह कहता है-"भई मिसाल देकर समझाइए।" अध्यापक के सामने आप तुलसीदास और भूषण की कविता की तुलना करते हैं; वह भी आप से उदाहरण पूछते हैं। सब जगह, सब देशों में विद्वान लेखक अपने विषय को व्यक्त करने के लिए उदाहरण पै उदाहरण देते हैं। इसलिए यदि आप अपने विषय को पाठकों के दिल पर बिठलाया चाहते हैं तो उदाहरण अधिक दीजिए।

७—व्याख्या-क्रम—व्याख्या के क्रम के विषय में हम काफी लिख चुके हैं। "ढांचा" लिखते समय उसकी मुख्य

बातों को समझा चुके हैं, तोभी दो विशेष नियमों को फिर लिख देते हैं—

(क) व्याख्यात्मक-निबन्ध से पहले उसका एक संक्षिप्त सार लिख लीजिए, जिसमें (१) आपको जो स्पष्ट करना है उसकी साधारण विज्ञापना हो; (२) इस व्याख्या के भागों का सारांश उनके क्रमानुसार एक एक वाक्य में लिख डालिए; यह दो आवश्यक बातें हैं। इस सारांश को पथ-प्रदर्शक के तौर पर पाराग्राफ रूप में लिख लेने से आपको अपनी व्याख्या लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी।

(ख) स्मरण रखिए, आपका निबन्ध इस विधि को बार बार दोहराता है—सामान्य, व्यापक सिद्धान्त की विज्ञापना और उसको विस्तार करने वाला व्योरा। चाहे आपका विषय कितना ही बड़ा हो—"भारतवर्ष का इतिहास", "फ्रांस की राज्य-क्रान्ति", "वैदिक धर्म"—कोई विषय हो, आप चाहे उसके कई टुकड़े करें, परन्तु अन्त में बात वही होगी—व्यापक नियम के बाद व्यापक नियम अपने अपने विस्तार करने वाले व्योरे के साथ चलता है। इस कारण प्रत्येक बड़े पाराग्राफ या छोटे पाराग्राफों के समुदाय में, व्यापक नियम और उसका विकास, यही रहेगा। जब यह सिलसिला बैठ जाता है तो फिर आप उदाहरणों और व्याख्यात्मक नोटों द्वारा भली प्रकार अपने विषय का विस्तार कर सकते हैं। अधिकांश व्याख्यात्मक निबन्धों का यही स्पष्ट सीधा मार्ग है।

८—व्याख्या की रोचकता—व्याख्यात्मक-निबन्ध का सम्बन्ध, क्योंकि सिद्धान्त और सम्मति के विकास के साथ है, इसलिए आवश्यक नहीं कि वह नीरस और अरोचक ही

हो। "लिखने में भाव को स्पष्ट करो" से अभिप्राय विषय को "निर्जीव" बनाना नहीं है। वाक्य-विन्यास-चातुरी, विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों का प्रयोग, मुहाविरों का ठीक उपयोग, ये सब बातें व्याख्यात्मक-निबन्ध को भी मनोरंजक बना सकती हैं।

—:०:—

अभ्यास (Exercise)

निम्नलिखित विषयों का संक्षिप्त सारांश एक एक पारा-ग्राफ में लिखो—

१. शीतकाल में कृषि-जीवन।
२ कालेज और स्कूल के विद्यार्थी-जीवन में भेद।
३. म्युनिसिपल चुनाव।
४ पुस्तकालय का संगठन।
५. भारत-सेवा-समिति।
६. स्वामी विवेकानन्द जी का चरित्र-बल।

* * * * *

निबन्ध-भेद में चौथा नाम "तार्किक" निबन्ध का है। इसका विषय बहुत बड़ा है। इस पुस्तक में मैं इसको सम्मिलित नहीं करता। यदि ईश्वर ने चाहा तो कभी उस पर अलग पुस्तक लिखूंगा। मुझे दुःख है कि मैं प्रसिद्ध हिन्दी लेखकों के निबन्ध, उदाहरण के तौर पर, इस पुस्तक में शामिल नहीं कर सका। कथा, वर्णन, और व्याख्या में मुझे उनके अच्छे अच्छे अंशों को उद्धृत करना ज़रूरी था, मैं यह भी नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि मेरे पास वे ग्रन्थ मौजूद न थे, और न ही हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, के पुस्तकालय से मुझे कुछ सहायता मिली। ख़ैर,

इसी पुस्तक का दूसरा भाग जब छपेगा, तो उसमें इस पुस्तक की पृष्ठ-संख्या देकर, परिशिष्ट रूप में, अच्छे अच्छे उदाहरण दिए जांयगे । पाठक महोदय निश्चिन्त रहें ।

लेखन-शैली (STYLE)

लेख में बल भरने के लिए चरित्र-बल की कितनी आवश्यकता है, यह हम पहले (देखो पृष्ठ संख्या २६–२७) बतला चुके हैं । निर्मल भाव निर्मल मनन से ही आ सकते हैं, इसकी महत्ता भी जना दी गई है । अब यहां पर यह बतलाने की और आवश्यकता है कि सामान्यतया, लेख-द्वारा पाठकों पर प्रभाव डालने के कौन से नियम हैं, अर्थात् उत्कृष्ट लेखन-शैली के कौन ख़ास ख़ास गुण हैं ।

सब से पहले, यह प्रत्यक्ष है कि पाठक लेखक का अभिप्राय समझे, उसको पता लगे कि लेखक क्या चाहता है; दूसरे, लेखक अपने पाठक की चित्त वृत्ति को वश में कर, किसी न किसी प्रकार उस पर प्रभाव डाले, तीसरे, पाठक लेख को पढ़ कर प्रसन्न या सन्तुष्ट हो ।

इसलिए उत्कृष्ट लेखन-शैली का पहला प्रधान गुण, स्पष्टता (Clearness)—जटिल से जटिल विषय को सुगम और सरल करने वाला बुद्धि-चमत्कार—है, दूसरा प्रधान गुण, प्रभावोत्पादक-शक्ति–ओज (Force) है, जिसका हृदय के साथ सम्बन्ध है; तीसरा प्रधान गुण, लालित्य (Elegance)—रुचि

को प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट करने वाला लालित्य-कला विशिष्ट गुण (Esthetic Quality)—है। लेखन-शैली के यही तीन गुण व्यक्ति को उच्च कोटि का लेखक बनाते हैं। अब हमें इनकी प्राप्ति के साधनों का विचार करना है।

१–स्पष्टता (Clearness)—यह बात स्वतः सिद्ध है कि आप अपने विचार दूसरों पर तभी स्पष्ट कर सकते हैं यदि आप स्वयं उनको स्पष्ट रूप से समझते हों। जब तक आप स्वयं अपने विचारों पर प्रभुत्व नहीं कर लेते तब तक दूसरों पर उनका प्रभाव डालने की सम्भावना बहुत कम है। अतएव, आप कभी भी किसी पदार्थ के ज्ञान को, चाहे वह साधारण हो या जटिल, अपना न समझें, जबतक कि आप उसका सुस्पष्ट और सीधा वृत्तान्त, अपने आपको अथवा दूसरों को, न कह सकें। आप विषय का निचोड़—उसकी सार वस्तु, मक्खन—निकालने की आदत डालिए, और अपनी साधारण बोलचाल अथवा लेख में सदा, सरल और स्वाभाविक तौर पर, अपनी वाकफियत को प्रगट किया कीजिए।

तथापि स्पष्टता और यथार्थता (accuracy) में भेद है। फरज करो एक दरजी कपड़े की काट छांट का ब्योरा दो आदमियों को समझाता है। यद्यपि दोनों की स्कली शिक्षा एक जैसी है तोभी एक के लिए वह विषय स्पष्ट है, दूसरे के लिए नहीं। पहला उस काम के पारिभाषिक शब्दों को समझता है, दूसरे के लिए वे शब्द बिल्कुल नए हैं। इसी प्रकार किसी मशीन का वर्णन एक प्रकार के श्रोताओं के लिए बिल्कुल जटिल और दूसरों के लिए अत्यन्त सरल हो सकता है, यद्यपि वर्णन करने वाले की यथार्थता में कोई सन्देह नहीं। स्पष्टता, इसलिए, सापेक्षक (Relative) संज्ञा है, जिसका

श्रोताओं अथवा पाठकों के साथ बहुत कुछ सम्बन्ध है। लेखक को अपने पाठकों का ख़्याल पहले कर लेना चाहिए। कला-कौशल का पण्डित शिल्पी, यदि, अपने कारीगरों को कला के पारिभाषिक शब्दों द्वारा अपना विषय समझाने की चेष्टा करता है तो इसका उसे पूरा अधिकार है। परन्तु यदि वही विषय उसकी कला से अपरिचित लोगों को समझाना पड़ जाय तो इसके लिए भी उसे तय्यार रहना चाहिए, अर्थात् एक ऐसा तरीका भी समझाने का सीखना चाहिए जिसके द्वारा उस विषय की परिभाषा से अनभिज्ञ पुरुषों को भी लाभ पहुंचाया जा सके। दोनों के ढंग भिन्न भिन्न हैं—पहला यथार्थ और पारिभाषिक है; दूसरा अधिक सार्वजनिक और अपरिभाषिक है। आप दोनों ढंगों का अभ्यास कीजिए, परन्तु आपके लेख की सफलता अधिकतर इसी में है कि आप किसी दशा में भी उनको अस्पष्ट न होने दें।

विषय के स्पष्टी-करण से अभिप्राय इतना ही नहीं कि हम केवल पाठकों को समझा भर दें, बल्कि उसके अन्तर्गत पढ़ने वाले का ध्यान खैंचना और उसमें उत्साह भरना भी है। इसके तीन उपाय हैं—(१) अपने पाठकों की योग्यता का विचार कर, तै कर लीजिए कि कितना वे जानते हैं; इसके बाद उनको धीरे धीरे, जो वे नहीं जानते, उसकी ओर ले जाने का यत्न कीजिए; (२) जैसे जैसे आप, पाठक की ज्ञान-वृद्धि हेतु, अपने विषय में प्रवेश करते चलें, आपको कथा, वार्ता, अलङ्कार, उपमा, कहावत, चित्र, नकशा इत्यादि साधनों से उसको (पाठक को) एक एक पग अपने साथ साथ ले चलना होगा; (३) अपने लेख को, एक ओर तो सब प्रकार के जटिल पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से, बचाइए; दूसरी ओर उसे उन वचनों (Expressions) से दूर रखिए जो सर्वथा निरर्थक और भ्रम-मूलक हैं।

लेखन-कला की परिभाषा में, स्पष्टता नष्ट करने वाले, तीन मुख्य दोष हैं—संदिग्धार्थता (Ambiguity), अनिश्चय (Vagueness), और अव्यक्तता (Obscurity)। संदिग्धार्थक वह शब्द कहाता है जो दो या दो से अधिक भावों में से किसी एक मे व्यवहृत हो—जिसका ठीक भाव मालूम करना कठिन हो जाय। सदिग्धार्थक वाक्य वह है जिसके दो या दो से अधिक अर्थ निकलें, अनिश्चित (Vague) कथन वह कहलाता है जिसके ठीक ठीक अर्थों को, काफी स्पष्टता के अभाव वश, पाठक न समझे; नितान्त अस्पष्ट वाक्य को अव्यक्त (Obscure) कहते हैं। जिनके लेखों में ऐसे दोष कभी कभी आ जायं, वे इनको आसानी से दूर कर सकते हैं। संदिग्धता और अनिश्चितता के दूर भगाने का उपाय यह है कि ऐसे निश्चयार्थक शब्दों का प्रयोग किया जाय जो दूसरे अर्थों का बिल्कुल रास्ता ही बन्द कर दें, प्रायः, कथन की अनावश्यक जटिलता अव्यक्तता का कारण है। परन्तु जिस प्रलोभना वश नवयुवक लेखक प्रायः अपने लेख को अस्पष्ट कर देत हैं वह उनकी आलस्य-पूर्ण सोचने की आदत है। वे परिश्रम कर अपनी बुद्धि से काम लेना ही नहीं चाहते, इसलिए उनका लेख अनिश्चित भावों को प्रगट करता है।

अतएव लेखन-शैली और विचार-शक्ति में प्रौढ़ता लाने के लिए—स्पष्ट लिखिए, निश्चित भावों को प्रगट कीजिए, विशेष-संज्ञा-बोधक शब्दों को प्रयोग में लाइए—इन मुख्य नियमों का अभ्यास लाजमी है।

२—ओज (Force)—लेखन-शैली का दूसरा गुण ओज है। यदि स्पष्टता, बुद्धि का गुण, लेखक की विशुद्ध विचार-शक्ति का फल है, तो ओज, हृदय की पवित्रता का गुण,

सहानुभूति और उत्साह का प्रार्थी है। पाठक को हँसाना और रुलाना, उसके मनोविकार को प्रेरित करना, उसके चरित्र पर प्रभाव डालना, कर्मवीर बनने का उपदेश देना, उसके ध्यान को बराबर आकर्षित रखना, ये उस ललित-कला के अङ्ग हैं जिसका विभेद अथवा व्याख्या बड़ा ही कठिन काम है। तोभी दो ख़ास नियम ओज भरने के ये हैं—(१) जिनके सन्मुख हम वक्तृता दें, हमारी उनसे पूरी सहानुभूति होनी चाहिए; (२) हम उसी विषय पर लेख लिखें जिसमें हमारी हार्दिक रुचि हो। यदि हम चाहते हैं कि हमारे लिखने का कुछ असर हो तो हमें सब से प्रथम अपने में दो गुणों—रुचि और सहानुभूति—को धारण करना चाहिए। जिसमें आपकी रुचि है, जो आप पर प्रभाव डालता है वह अवश्य ही कुछ न कुछ दूसरों पर भी प्रभाव डालेगा। यदि आप अपने पाठक के साथ सहानुभूति कर सकते हैं तो उसका भी आपके साथ सहानुभूति करना कठिन न होगा। तथापि स्मरण रखिए कि लेखन-शैली में ओज लाने का एक और ढंग–निरन्तर अभ्यास–भी है। केवल विचार की दृढ़ता अथवा हार्दिक संवेदना (Feeling) ही से कोई प्रभावशाली लेखक नहीं बन सकता, बल्कि इसके साथ साथ लिखने का लगातार अभ्यास भी करते रहना चाहिए। जैसे केवल पशु समान ताक़त किसी को पहलवान नहीं बना देती, बल्कि नित्य के व्यायाम का अभ्यास उसके शरीर में फुरती लाता है, इसी प्रकार बुद्धिमत्ता इसी में है कि नित्य प्रति कुछ न कुछ अवश्य ही लिखने का अभ्यास कीजिए। अभ्यास में बड़ी शक्ति है; आप चाहे अपनी दिनचर्य्या लिखें, चाहे कोई चिट्ठी; चाहे मामूली तार, यदि वह अच्छी प्रकार सोच विचार कर लिखी जाय तो उसका नित्य का अभ्यास धीरे धीरे आपके विचार-विकास में सहायता देगा, और आपको

अपने विचार अच्छी परिष्कृत भाषा में प्रगट करने की आदत पड़ जायगी।

अब हम ओज के दो यांत्रिक (Mechanical) ढंगों पर दृष्टि डालते हैं। पहला तो हमारा पुराना परिचित "गौरव (Emphasis)" या "पराकाष्ठा (Climax)" का ढंग है। कहना नहीं होगा कि निबन्ध की सामग्री का क्रमानुसार (बल और महत्ता के तरीके पर) संगठन करने से भी लेख में ओज आता है। दूसरा अलङ्कारों के प्रयोग, विशेष कर उपमा और रूपक, का ढंग है। जब आप लेखक के मन पर, चित्रोपम (Picturesque) संस्कार डालने के हेतु, किसी वस्तु को दूसरे नाम से पुकारते हैं तो उसे रूपक कहते हैं; जैसे, किसी वीर पुरुष को पुरुष-सिंह कहना, या अपने किसी सहायक को "दाहिना हाथ" बतलाना। उपमा उसे कहते हैं जब आप किसी वस्तु के साथ तुलना देकर उसका वर्णन करते हैं, जैसे—उसका रंग तवे की तरह काला है, वह राजाओं की तरह सज धज कर निकला। कविता को तो, इन दोनों—उपमा और रूपक—से, प्रभावोत्पादक बनाते ही हैं, परन्तु गद्य में भी इनसे बड़ी सहायता मिलती है। हां, यह बात अवश्य ध्यान में रहे कि जो उपमा और रूपक आप प्रयोग करते हैं वे आपके विषयानुकूल हों; और वे अनर्थक, असंबद्ध, या खेंचातान, और अपरिचित न हों।

३—लालित्य (Elegance)—अब हम लेखन-शैली के तीसरे प्रधान गुण, लालित्य, की ओर आते हैं। अपने अन्य दो साथियों की अपेक्षा इसमें क्या विशेषता है, इस बात को ज़रा सावधानी से बतलाना पड़ेगा। एक पुस्तक रोचक न होने पर भी स्पष्ट हो सकती है; दूसरी की भाषा, कई दशाओं में,

ओज-पूर्ण और रोचक है, किन्तु स्पष्ट नहीं; तीसरी की वर्णन-शैली स्पष्ट और प्रभावोत्पादक तो है, परन्तु रुचिकर अथवा सन्तोष-जनक नहीं। वह काम, जो रुचि के अनुकूल अत्यन्त सुखकर और पूर्णतया सन्तोष-जनक होता है, चारु अथवा ललित कहलाता है। परन्तु इसमें अश्लील रुचि का स्वप्न में भी ध्यान न कीजिए, यहां रुचि का अभिप्राय उस पवित्र रस से है जिसके आस्वादन के लिए उच्च कोटि के साहित्य-सेवी भ्रमर समान लालायित रहते हैं। ऐसे गुण का जाति-निर्देश (Generalization) कठिन है, इस विषय पर निश्चित रूप से तो, खास हालतों में, किसी निबन्ध को देख कर ही कहा जा सकता है, तथापि निम्नलिखित सूचनाओं से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।

(क) लालित्य में सब से पहली चीज़ बाह्य आवरण है। आंख सुन्दरता पसन्द करती है। आपका हस्त लेख साफ, शुद्ध, लेख-चिन्हानुकूल, और परिष्कृत होना चाहिए। आप असावधानी से, कभी भी, भद्दा और अशुद्ध लिखने की आदत न डालिए।

(ख) लालित्य का केवल हस्तलेख की सफाई पर ही अन्त नहीं हो जाता, बल्कि इसके अन्दर वे सब नियम आ जाते हैं, जिनकी विवेचना हमने निबन्ध-रचना तथा निबन्ध-विच्छेद का ब्योरा लिखते समय की है। लेखक को बराबर उनके अनुकूल लिखना पर्य्याप्त है, उनके बाहरी स्वरूप को आदर्श मान कर नहीं, बल्कि उनके निष्कर्ष का विशेष ध्यान रख कर, क्योंकि बाहर का आकार (Form) निष्कर्ष (Substance) की छाया मात्र है। लेखन-शैली का भद्दापन, उसकी कर्कशता, उसकी बीभत्सता, ये दोष लेखक की विचार-सामग्री का

स्वरूप बदल देते हैं, और उसका भाव प्रगट करने में बाधा डालते है। इनको भी अभ्यास से ही दूर भगा सकते हैं। नित्य का अभ्यास शब्दो से परिचय करवाता है, उनको प्रेम पूर्वक बुलाना सहज हो जाता है, उनकी आवाज़ पहचानने की शक्ति बढ जाती है। जब शब्दो की ध्वनि (Tone) का लिखते समय ध्यान रहेगा, जब उनके ताल (Rhythm) को जानने की आदत पड जायगी, जब उनकी तुल्यता (Balance) की महत्ता का परिज्ञान हो जायगा तो लेखन-शैली के उत्कृष्ट गुण—धारा-प्रवाह (Smoothly flowing Style)—की प्राप्ति कुछ भी कठिन नहीं रह जाती। विचार (Thought) और भाव (Feeling) की यथार्थता से रुचि का विकास होता है, और अच्छी रुचि शब्द-लालित्य का मूल है।

यहां पर यह बतला देना भी अनावश्यक न होगा कि लेखन-शैली के इस गुण की महिमा समझने के लिए विद्यार्थियो को हिन्दी गद्य पद्य के विद्वानों की पुस्तकों का अनुशीलन करना उचित है। वे गन्दे उपन्यासों का तो बिल्कुल बहिष्कार कर दें, और उनके स्थान पर नए और पुराने प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों का अध्ययन किया करें। हिन्दी पत्रिकाओं में भी अब विद्वत्ता-पूर्ण लेख निकलने लगे हे, उनका पढ़ना भी अच्छा है। सब से बढकर नित्य का अभ्यास, सच्चरित्रता, और शुद्ध-मनन की आदत, ये तीन गुण हैं जो व्यक्ति को इस कला में निपुण बनाते हे।

अब हम अन्त मे सत्य-ग्रन्थ-माला के अंग्रेज़ी पढ़े लिखे पाठकों के हितार्थ, लेखन-कला-निपुण, अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान, बेरट वेराडल, की पुस्तक में से अवतरण उद्धृत कर इस विषय की समाप्ति करते हैं—

"We have seen already that every word we use must in greater or less degree possess two distinct traits,—denotation and connotation. It denotes the idea which good use agrees that it shall stand for; it connotes the very various and subtile thoughts and emotions which cluster about that idea in the human mind, whose store of thoughts is so vastly greater than its store of words with which to symbolize thought And the traits that word possess, compositions must possess too, sentences, paragraphs, chapters, books, put together the words which compose them, and all the traits of these words. In all the elements of style, denotation and connotation may alike be recognized. The secret of clearness, we saw, lies in denotation, the secret of force in connotation. But we have already seen that when all is done, the expression of thought and feeling in written words can never be complete Do what we may, with denotation in mind and connotation too, our style can at best be only something

'That gives us back the shadow of the mind.'

No expression can be so perfect that a better can

not be imagined In this truth, I believe, lies the final secret of the quality I call elegance. The more exquisitely style is adapted to the thought it symbolizes, the better we can make our words and compositions denote and connote in other human minds the meaning they denote and connote in ours, the greater charm the style will have, mearly as a work of art In a single phrase, the secret of elegance lies in adaptation "

—*Wendell's "English Composition."*

विशेष-वक्तव्य

पिछले वर्ष "कैलाश-यात्रा" में "सञ्जीवनी-बूटी" नामक पुस्तक का विज्ञापन दिया गया था, परन्तु वह अब तक नहीं छपी। हमारे पास उसके लिए बराबर चिट्ठियां आ रही हैं और "माला" के प्रेमी उसकी बाट जोह रहे हैं। "बूटी" क्यों नहीं छपी? इसका उत्तर देने में दो पेज काले करने पड़ेंगे। "साहित्य-सेवाश्रम" तो देश की वर्तमान भयानक दशा में खोला नहीं जा सकता। उसके लिए अभी समय अनुकूल नहीं है। "बूटी" का पहला छपा हुआ मेटर रद्दी कर, अब उसे वीर्य्य-रक्षा, व्यायाम, प्राणायाम, और ईश्वर पर विश्वास— इन चार भागों में अलग अलग छपवाने का विचार किया है। काग़ज की महँगी के कारण दो हजार से अधिक प्रतियां नहीं छपवाई जायेंगी। जो सज्जन आठ आना भेज पक्के ग्राहक हो जायेंगे, उनको सत्य-ग्रन्थ-माला के नए अंक पौने दाम पर मिला करेंगे। हां, एक बात जरूर हम पहले से कह देते हैं। "सत्य-ग्रन्थ-माला" का अपना प्रेस न होने से तथा स्वामी जी के व्याख्यानादि देशहित-कार्य्यों में फंसे रहने के कारण, यदि अंकों के छपने में देर हो जाय तो आप हाय तोबा न मचाइयेगा। जब पुस्तक छपेंगी फौरन आपकी सेवा में भेजी जाया करेंगी। हमने अब तक पक्के ग्राहक बनाने का नियम नहीं किया था, किन्तु अपने प्रेमियों के अनुरोध से ऐसा किया है। अब आप इसका पूर्ण फायदा उठा सकते हैं।

प्रार्थी—

मेनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला आफ़िस,

इलाहाबाद।

भूल-संशोधन

पुस्तक में शायद कई एक प्रेस-भूलें रह गई होंगी, मुझे उन सब को ढूढने का अवसर नहीं मिला। पृष्ठ ३२ पर "टाड" की जगह "टाड़" और "राजस्थान" की बजाय "राजिस्थान" छप गया है, पाठक महोदय उसे ठीक कर लें। दूसरे संस्करण मे मै अन्य सब भूलों को, यदि कोई रह गई होगी, शुद्ध करने का यत्न करूंगा।

—सत्यदेव